सहजानंद शास्त्रमाला

श्री सहजानन्द गीता

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

श्री सहजानन्द गीता

अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुवर

श्री मनोहर जी वर्णी सहजानन्द जी महाराज

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५ ए, रणजीत पुरी, सदर मेरठ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला का पाँचवा पुष्प

श्री सहजानन्द गीता

रचयिता :—
शान्तिमूर्ति न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक वर्णी
मनोहर जी "सहजानन्द" महाराज

सम्पादक :—
श्री मूलचंद जैन, मुजफ्फरनगर

प्रकाशक :—
श्री खेमचन्द जैन सर्राफ, मंत्री
श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५-ए, रंजीतपुरी, सदर, मेरठ–१

द्वितीय संस्करण
१९८[illegible] ई०

मूल्य :
रु० ४-२५

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

"प्रस्तावना"

आज हम दुखी क्यों हो रहे हैं ? कारण इसका यही समझ में आता है हम जो भी कार्य करते हैं उसका फल अवश्य चाहते हैं। किसीकी जरा सी भलाई कर दी और अन्तरंग में यही इच्छा बनी रही कि यदि हमारे ऊपर कोई आपत्ति किसी समय आ जायेगी तो वह भी हमारी सहायता करेगा। फल इसका यह होता है कि यदि उस विपत्ति के समय वह हमारे काम नहीं आता तो हम क्लेशित व दुखी होते हैं। इसकी तो बात छोड़ो हमारी तो यहाँ तक प्रवृत्ति हो गई है कि यदि हम वीतराग भगवान की भी पूजा करते हैं तो अन्तरङ्ग में यही आशा लिये रहते हैं कि इस पूजा के फलस्वरूप हमें धन-सम्पत्ति, पुत्र आदि प्राप्त हों और परभव में भी स्वर्गादिकके सुख प्राप्त हों परिणाम यह होता है कि वीतरागी की पूजा करने से जो अपने परिणाममें वीतरागता आनी चाहिये वह नहीं आती। इस प्रकार की हमारी परिस्थिति है फिर इस पर हम कहते हैं कि पूजा करते-करते तमाम जीवन बीत गया परन्तु रहे हम दुखी के दुखी ही।

"श्री सहजानन्दगीता" के रचयिता न्यायतीर्थ, ज्ञाननिधि, प्रखर पंडित पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' महाराज चेष्टामें निस्पृहताकी अनुमोदना कर कहते हैं जिस समय तक हममें शक्ति न आ जाये हमें कर्म करना ही पड़ता है। उस समय यदि हम कर्म करें तो वह फलासक्ति व आशाका त्याग करके करें परन्तु लक्ष्य सदैव इस बात पर ही रखें कि यह जो मैं कर रहा हूँ यह भी मेरा स्वभाव नहीं है।

'श्री सहजानन्द गीता' विपत्तिमें हमारा हमारा सच्चा मित्र है। जिस समय हम दुःखसे व्याकुल होते हैं, पाप कर्मका उदय होता है, किसी प्रकार भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सुख और शांति की प्राप्ति नहीं होती तो 'गीता' का यह पाठ अमृतका कार्य करता है। घोरसे घोर विपत्ति आने पर भी हम किस प्रकारसे उस विपत्ति को आकुलित न होते हुए सहन कर सकते हैं इसका सीधा-सादा उपाय गीताकारने अध्याय नं० ७ श्लोक नं० २ में हमें बताया है कि सदैव मैं इस बातका ही विचार करूं कि ये जो विपत्तियें मेरे ऊपर आ रही हैं ये सब मेरे ही पूर्वकृत कर्मोंका फल है। अत: मुझे स्वयं समभावसे सहन करना चाहिये। कोई भी मुझे इस विपत्ति से छुटकारा दिलाने में समर्थ नहीं है। इस अस्थिर जगतमें मेरा कोई भी रक्षक अथवा शरण न हुआ, न है और न होगा। मैं सत् पदार्थ हूं। अत: अनादि से हूँ। इस भवसे पहले भी मैं था। वहाँ पर भी किसी आत्मा ने मुझे मरण से न रोका। इस भव में भी मैं अनेक बार असाध्य रोगों से पीड़ित हुआ परन्तु रंच भी कोई मेरे इस दुःख को बांट न सका और न कम ही कर सका। अब तो मैं परमें शरण बुद्धि के भ्रम को हटाकर स्वयं शरण स्वरूप निज ब्रह्ममें ही ठहर जाऊँ तो मैं सुखी हो सकता हूं। कितना अनोखा उपाय है सुखी होने का। न कुछ किसी से लेना है और न कुछ किसी को देना है। बस श्रद्धा उपर्युक्त प्रकार हो जाये तो सुख ही सुख है।

जब हमें किसी प्रकार की धनहानि हो जाती है या इष्ट-वियोग अथवा अनिष्ट-संयोग आदि हो जाता है तो हम महान दुःखी हो जाते हैं जिसका मूल कारण है कि हमने यह श्रद्धा बना रखी है कि हमें अमुक दुःखी करता है, अमुक सुखी करता है और यदि अमुक इस प्रकार ऐसा न करता तो हमारा भी ऐसा न होता। पूज्यश्री किस ढंग से उस दुःखी होने के कारण को हटाने का उपाय बताते हैं देखने की चीज है। आप कहते हैं—

"देहोऽस्तु वा न को लाभः का हानिर्मेतु शान्तिदा।
ज्ञानदृष्टिः सदा भूयात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥ ७ ॥ १८ ॥

अर्थात् देह हो उससे क्या लाभ है अथवा देह न हो उससे क्या हानि है। परन्तु शांति देने वाली ज्ञानदृष्टि मेरे सदा ही हो जिससे मैं अपनेमें अपने अर्थ स्वयं सुखी होऊँ।" और यदि युक्तिसे भी विचार करें, तो मालूम होगा कि

http://www.jainkosh.org

यह शरीर ही सब अनर्थों की जड़ है, शरीर के कारण ही भूख प्यास आदि की वेदनायें होती हैं। इष्ट-अनिष्ट की कल्पना भी तो शरीर के संसर्ग से ही होती हैं। शरीर न रहे तब किसी प्रकार की भी आपत्ति न रहे। शरीर रहित होने पर ही तो भगवान बनते हैं अर्थात मोक्ष में जा बिराजते हैं। इस प्रकार का यह शरीर है, इससे फिर ममत्व क्यों करें? शरीर को हम अलग तो नहीं कर सकते परन्तु इतना तो किया ही जा सकता है कि उसमें ममत्व मोह न करें। फिर शरीर रहे या न रहे कोई हानि नहीं। केवल ज्ञानियों के शरीर रहता है परन्तु तत्-सम्बन्धी मोह राग न रहने के कारण वह अनन्त सुखी रहते हैं। अब आप ही बतलाइये कि क्या इस प्रकार की श्रद्धा करने वाला आत्मा घोर से घोर शरीरिक वेदना उपस्थित होने पर भी घबरा सकता है? नहीं, कभी नहीं।

सच पूछो तो इस ह्रास के काल में 'गीता' की रचना करके जो उपकार हमारे ऊपर पूज्य श्री सहजानन्द जी महाराज ने किया है उससे हम किसी प्रकार भी उऋण होने में अपने आप को समर्थ नहीं पा रहे हैं।

गीताकार की विद्वत्ता के विषय में कुछ लिखना मुझ सरीखे की शक्ति से बाहर है। मुझे आप के सम्पर्क में आने का काफी सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मैं तो यही अनुभव करता हूं कि इस काल में इतनी बुद्धि होना कोई साधारण बात नहीं है। धारणा शक्ति तो आपकी अपूर्व है। इस छोटी सी वयमें इतना ज्ञान देखकर आश्चर्य होता है। यह जानकर तो आपको दांतों तले अंगुली दबानी ही पड़ेगी कि इस 'गीता' की (जिसमें ३६४ श्लोक संस्कृत भाषा में हैं और जिसके प्रत्येक श्लोक का अन्तिम पद वही एक है) आपने केवल १५ दिन में ही रचना की थी जब आप इटावा से फिरोजाबाद पधार रहे थे (सं० २००७ में)। इतना महान ग्रन्थ केवल १५ दिन में तैयार हो गया आप को सुनकर कदाचित विश्वास न आवे पर जो सज्जन उनके सम्पर्क में आये हैं वह जानते हैं कि उनके लिये यह कोई कठिन चीज नहीं है। विद्वान तो बहुत होते हैं परन्तु आपमें यह विशेषता देखी है कि विद्वान होने के साथ ही साथ वास्तविक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अथवा व्यावहारिक (Practical) भी हैं अर्थात जो लिखते हैं या जो कहते हैं वह पर्याप्त अंशों में जीवन में भी उतारते हैं।

यदि यह महान एवं जीवन में उथल-पुथल मचा देने वाला ग्रन्थ संस्कृत भाषा में ही रह गया तो आजकल के संस्कृत से अनभिज्ञ परन्तु जिज्ञासु सज्जन अपना कुछ कल्याण न कर सकेंगे यह विचार कर श्रद्धेय ब्रह्मचारी छोटे लाल जी ने आप से प्रार्थना की कि आप इसका अर्थ हिन्दी भाषा में कर दें। आप का हृदय कोमल व विशाल तो है ही आपने इसकी भी पूर्ति कर दी। परिश्रम का फल आज आपके सामने इस ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत है।

इस ग्रन्थ के सातों ही अध्याय अपूर्व हैं। सुख-मन्दिर के शिखर पर पहुंचने के लिये सर्वप्रथम आत्मशक्ति का बोध परमावश्यक है। अतः गीता के प्रथम अध्याय में इसी विषय का दिग्दर्शन कराया गया है। फिर अन्तर्ज्ञान और बारह भावनाओं का जिसके बिना सुख प्राप्ति असम्भव है, दूसरे व तीसरे अध्याय में समावेश किया गया है। आशा से रहित, स्वमें स्थित व समताका धारी हो वैरागी बनकर सुख का पात्र हो सकता है इसी का वर्णन आपको वैराग्य प्ररूपक, स्वास्थ्य प्ररूपक, साम्यप्ररूपक, व वैराग्यप्ररूपक, क्रमशः चौथे, पाँचवें, छठे व सातवें अध्याय में मिलेगा। इतना कठिन होते हुए भी आपने चुटकुलों में गहन तत्त्व को समझाया है और सुख का मार्ग बहुत ही सरल शब्दों में दिखाया है। यह कार्य इस प्रकार सम्पन्न होना आप जैसे अनुभवी द्वारा ही सम्भव था।

आशा है हम आप के परिश्रम से पूर्ण लाभ उठायेंगे और सुख का सच्चा मार्ग जो इस ग्रन्थ में प्रतिपादित किया गया है उसका श्रद्धान, ज्ञान और आचरण करके अपने को सुखी बनायेंगे।

—मूलचन्द जैन
मुजफ्फरनगर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

॥ ओ३म् ॥

ओ३म् नमः सिद्धेभ्यः

पूज्यश्री १०५ क्षुल्लकमनोहरवर्णिसहजानन्दप्रणीता

सहजानन्दगीता

प्रथमोध्यायः

मंगलाचरणम्

(१)

रागाभावः स्वयं स्वाप्तावाप्तस्वो हि स्वभाववत् ॥
स्वे स्वं परं नमस्कृत्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—स्वाप्तौ स्वयं रागाभावः भवति, च आप्तस्वः सः स्वभाववत् अस्ति। अतः तं परं च स्वं स्वे नमस्कृत्य अहं स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—निज आत्माकी उपयोगद्वारा प्राप्ति होनेपर स्वयं राग द्वेष आदि क्लेशोंका अभाव हो जाता है, और प्राप्त किया है स्व आत्माको जिसने ऐसा वह परमात्मा निज के सहज भावके समान है। इसलिये उस परमात्मा तथा स्वात्माको अपनेमें नमस्कार करके मैं अपनेमें अपनेलिये अपनेद्वारा सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(२)

याद्दक् सिद्धात्मनो रूपं ताद्दग्रूपं निजात्मनः ।
भ्रान्त्या क्लिष्टस्तु संसारे-स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—याद्दक् रूपं सिद्धात्मनः अस्ति शक्तितः ताद्दक् रूपं निजात्मनः अस्ति तु संसारे भ्रांत्या क्लिष्टः, अधुना अभ्रांतः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–जैसा स्वरूप सिद्धात्माका है, शक्तिकी अपेक्षासे वैसा स्वरूप निज आत्माका है, परन्तु संसारमें भ्रमसे क्लेशको प्राप्त हुआ, अब भ्रमरहित होता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(३)

विश्वतो भिन्न एकोऽपि कर्ता योगोपयोगयोः ।
रागद्वेषविधाताऽऽसम्-स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—विश्वतो भिन्नः एकः अपि अहं योगोपयोगयोः कर्ता च राग-द्वेषविधाता आसम्, अधुना अभ्रांतः सद् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–समस्त पदार्थ से न्यारा अकेला होनेपर भी मैं योग अथवा आत्माके प्रदेश परिस्पन्द तथा उपयोगका कर्ता और राग द्वेषका करने वाला हुआ । अब भ्रांति रहित होता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ।

(४)

न करोमि न चाकार्षम् न करिष्यामि किञ्चन ।
विकल्पेन मुधा त्रस्तः-स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अहं किञ्चन न करोमि च न किञ्चन अकार्षम् न किञ्चन करिष्यामि किंतु मुधा विकल्पेन त्रस्तः अधुना निर्विकल्पः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मैं न कुछ करता हूं और न मैंने कुछ किया तथा न मैं कुछ करूंगा, परन्तु व्यर्थ विकल्पसे दुखी हुआ हूं, अब निर्विकल्प होता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(५)

स्वरागवेदनाविद्धश्चेष्टे स्वस्यैव शान्तये ।
नोपकुर्वे च नो शान्तिः-स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अहं स्वरागवेदनाविद्धः सन् स्वस्यैव शान्तये चेष्टे, न परान् उपकुर्वे, च नो शान्तिः भवति, अधुना सद्दष्टिः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मैं अपने रागकी वेदनासे वेधा हुआ अपनी ही शांति केलिये चेष्टा करता हूँ, न दूसरोंका उपकार करता हूँ और न उससे शांति होती है, अब सच्ची द्दष्टि वाला होता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(६)

याति नेतो न चायाति जातुचित्किञ्चिदन्यतः ।
खिन्नो हीनाधिकंमन्यः''स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–न इतः जातुचित् किञ्चित् याति न च अन्यतः किञ्चित् आयाति, अहं हीनाधिकंमन्यः वृथा खिन्नः अधुना सद्दृष्टिः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ–न यहांसे (निज आत्मासे) कभी कुछ जाता है और न अन्य पदार्थसे कुछ आता है, मैं अपनेको कम या अधिक मानता हुआ व्यर्थ खिन्न हुआ हूं, अब सच्ची दृष्टि वाला होता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयम् सुखी होऊं ॥

(७)

स्वातन्त्र्यं वस्तुनो रूपं तत्र कः किं करिष्यति ।
हानिर्मे हि विकल्पेषु स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–वस्तुनः स्वातन्त्र्यं वस्तुतः रूपं अस्ति, तत्र कः किं करिष्यति हि विकल्पेषु मे हानिः, अधुना स्वातन्त्र्यदृष्टिः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ–वस्तु की स्वतन्त्रता वस्तु का स्वरूप है उस स्वरूप में कौन क्या करेगा ? निश्चयसे विकल्पोंके कारण ही मेरी हानि है । अब स्वातन्त्र्यदृष्टिवाला होता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिए स्वयं सुखी होऊं ।

http://www.jainkosh.org

(८)

ज्ञाता द्रष्टाहमेकोऽस्मि निर्विकारो निरञ्जनः ।
नित्यः सत्यः समाधिस्थः''स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय–अहं ज्ञाता द्रष्टा एकः अस्मि, निर्विकारः निरञ्जनः अस्मि नित्यः सत्यः समाधिस्थः अस्मि, अतः समाधिस्थः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–मैं जाननेवाला व देखनेवाला हूं, अकेला हूं, विकार रहित व मलरहित हूं, अविनाशी केवलकी सत्तामें होने वाला साम्य अवस्थामें स्थित हूं, इसलिये समता परिणाममें ठहर कर मैं अपनेमें अपनेलिए स्वयम् सुखी होऊं ।

(९)

अमरोऽहमजन्माहं निःशरीरो निरामयः ।
निर्ममो नैर्जगत्योऽहं''स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–अहं अमरः अजन्मा अस्मि, निःशरीरः निरामयः अस्मि, अहं निर्ममः नैर्जगत्यः अस्मि, अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ–मैं अमर हूं, अजन्मा हूं, शरीररहित व रोगरहित हूं, जिसका जगतमें कुछ नहीं है ऐसा, तथा जो जगतका कुछ नहीं है ऐसा मैं हूं, इसलिये मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयम् सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(१०)

नोपद्रवो न मे द्वन्द्वो निर्विकल्पोऽपरिग्रहः ।
दृश्यः कैवल्यदृष्ट्याऽहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—मे उपद्रवः न अस्ति, द्वन्द्वः न अस्ति अहं निर्विकल्पः अस्मि, अपरिग्रहः अस्मि, कैवल्यदृष्ट्या अहं दृश्यः अस्मि, अतः कैवल्यदृष्ट्या स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मेरे उपद्रव नहीं हैं, द्वन्द्व नहीं है, मैं विकल्प रहित हूं, परिग्रह रहित हूं, केवल अकेलेकी दृष्टिसे मैं प्रतिभास के योग्य हूं, इसलिये केवल अकेलेकी दृष्टिद्वारा मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(११)

निर्वंशश्चेतनावंशो निर्गृहश्चेतनागृहः ।
चेतनान्यन्न मे किञ्चित्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अहं निर्वंशः चेतनावंशः अस्मि, निर्गृहः चेतनागृहः अस्मि मे चेतनाऽन्यत् किञ्चित् न अस्ति, ततः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मैं वंश रहित हूं तथा चेतना ही जिसका वंश है ऐसा हूं, मैं घर रहित हूं, तथा चेतना ही जिसका घर है ऐसा मैं हूं । मेरा चेतनासे अतिरिक्त कुछ भी नहीं है —इसलिये अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(१२)

निर्मित्रश्चेतनामित्रो निर्गुरुश्चेतनागुरुः ।
चेतनान्यन्न मे किंचित स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अहं निर्मित्रः चेतनामित्रः अस्मि, निर्गुरुः चेतनागुरुः अस्मि मे चेतनान्यत् किञ्चित् अस्ति, अतः चैतन्ये तिष्ठन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मैं मित्र रहित हूं, तथा चेतना ही है मित्र जिसका ऐसा हूं, मैं गुरु रहित हूं, तथा चेतना ही है गुरु जिसका ऐसा हूं, चेतनासे अतिरिक्त मेरा कुछ नहीं है, अतः चैतन्य स्वरूप में ठहरता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ।

(१३)

निर्वित्तश्चेतनावित्तो निष्कलश्चेतनाकलः ।
चेतना यन्न मे किंचित स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वब—अहं निर्वित्तः चेतनावित्तः अस्मि, निष्कलः चेतनाकलः अस्मि मे चेतनान्यत् किञ्चित न अस्ति, अतः चेतमानः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मैं धन रहित हूँ, व चेतना ही है धन जिसका ऐसा हूं, शरीर रहित हूँ, व चेतना ही है शरीर जिसका ऐसा हूं, मेरा चेतना से अन्य कोई भी पदार्थ नहीं है, अतः जानता देखता हुआ मात्र ही मैं अपनेमें अपनेलिये अपनेआप सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(१४)

निष्कीर्तिश्चेतनाकीर्तिर्निष्कृतिश्चेतनाकृतिः ।
चेतनान्यन्न मे किञ्चित्''स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अहं निष्कीर्तिः चेतनाकीर्तिः अस्मि, निष्कृतिः चेतनाकृतिः अस्मि, मे चेतनान्यत् किञ्चित् नअस्ति, अतः चैतन्यं चेतमानः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मैं कीर्ति रहित हूं व चेतना ही है कीर्ति जिसकी ऐसा हूं, और कृति रहित हूं, व चेतना ही जिसकी कृति है ऐसा हूं, मेरा चेतनासे अन्य कुछ भी नहीं है, अतः चैतन्यभाव को ही चेतता हुआ मैं अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(१५)

जीविताशा प्रतिष्ठाशा विषयाशा जनैषणा ।
अभिमुग्धो विनष्टोऽहं''स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—जीविताशा, प्रतिष्ठाशा, विषयाशा, जनैषणा अभिः मुग्धः अहं विनष्टः, अधुना ताभ्यः निवृत्य स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—जीने की आशा यश प्रतिष्ठा की आशा विषय प्राप्ति की आशा, लोग अच्छा कहें इस प्रकार की आशा, इनसे मोहित हुआ मैं विनष्ट हुआ अब उनसे निवृत्त होकर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(१६)

भवेऽप्यस्मिन् मुहुर्नाना दुःखं प्रापं क्व रक्षकः ।
को भूतः कस्य भूतोऽहं''स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अहं अस्मिन् भवे अपि मुहुः नाना दुःखम् प्रापम्, तत्र मम क्व कः रक्षकः, भूतः, च कस्य अहं रक्षकः भूतः, अधुना स्वयं रक्षिते स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मैंने इस भव में भी बार-बार नाना तरह के दुःख पाये, इस दुःख के समय में मेरा कहां कौन रक्षक हुआ, और किसका मैं रक्षक हुआ, अब स्वयं रक्षित अपने आपमें अपनेलिए अपने आप सुखी होऊं ।

(१७)

दुस्त्याज्या चेद्रतिस्त्यक्ता मृतत्यक्तकुटुम्बिनाम् ।
स्वातन्त्र्यं स्यानि किं स्वस्थ स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—यदा मया मृतत्यक्तकुटुम्बिनां दुस्त्याज्या रतिः त्यक्ता चेत् अधुना कस्मिन्नतुरज्य स्वस्य स्वातन्त्र्यं स्यानि, अतः सर्वतो विरज्य स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—जब मैंने मरे व छोड़े हुए कुटुम्बियोंका दुस्त्याज्य, (मुश्किलसे छूट सकने योग्य) स्नेह छोड़ दिया तो अब किसमें स्नेह करके अपनी स्वतन्त्रता नष्ट करूं, अतः सर्व अर्थोंसे राग हटाकर अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(१८)

ज्ञात्वा रागफलं दुःखं जीवानां भ्रमतामिह ।
रागं मुञ्चानि नो? मुक्त्वा''स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—इह भ्रमतांजीवानां दुःखं रागफलं ज्ञात्वा किं अहं रागं नो मुञ्चानि ? मोक्ष्यामि एव नु रागं मुक्त्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—इस लोकमें भ्रमण करने वाले जीवों के दुःख को राग का फल जानकर क्या मैं राग को नहीं छोड़ूँ ? नियम से छोड़ूँगा ही, तब राग को छोड़कर मैं अपने में अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(१९)

द्रष्टारं स्वयमात्मानं पश्य पश्य न चेतरम् ।
तिष्ठानि निर्विशेषं चेत्''स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—त्वं स्वयं आत्मनं दृष्टारं पश्य, इतरं दृष्टारं न पश्य, यस्मात् आत्मा एव द्रष्टा तस्मात् यदि अहं निर्विशेषं तिष्ठानि चेत् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—तुम स्वयं अपने आपको द्रष्टा देखो, मानो, अन्य किसीको द्रष्टा-देखनेवाला मत देखो, जिस कारण आत्मा ही द्रष्टा है उस कारण यदि मैं विशेष रहित =विकल्प रहित ठहरा रहूँ तो अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(२०)

अहंकाराहिना दष्टः कर्ता भोक्ता भवेन्न मे ।
ममत्वाहंत्वभावोऽपि''स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्यव—अहंकाराहिना दष्टः अयं जीवः कर्ता भोक्ता भवेत् किंतु मे ममत्वाहंत्वभावः अपि न अस्ति, अतः अहंकारत्वं त्यक्तवा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—अहंकाररूपी सर्पसे डसा हुआ यह जीव कर्त्ता भोक्ता होता है। किंतु मेरे तो ममत्व और अहंत्व भाव भी नहीं है, इस लिये अहंकारपनेको छोड़कर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(२१)

वाञ्छन् गृह्णन् त्यजन् हर्षन् शोचन् कुप्यन्न वर्तते ।
यत्रास्ते तत्स्वसाम्राज्यं''स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—यः भावः वाञ्छन् गृह्णन् त्यजन् हर्षन् शोचन् कुप्यन् न वर्तते, च यत्र आस्ते तत्स्वसाम्राज्यं अस्ति तस्मिन् ज्ञायक-भावमात्रे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—जो भाव वाञ्छा करता हुआ ग्रहण करता हुआ त्याग करता हुआ हर्ष करता हुआ शोक करता हुआ क्रोध करता हुआ नहीं रहता है, और जिस स्वभावमें ठह-रता है, वहं आत्माका साम्राज्य है, उस ज्ञायकभाव मात्र अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(२२)

यदाऽज्ञता तदासीन्मे प्रीतिर्भोगे स्वविभ्रमात् ।
दीनवज्ज्ञोपि धावानि ?''स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–यदा मे अज्ञता आसीत् तदा भोगे स्वविभ्रमात् मे प्रीतिः आसीत् अथ ज्ञः अपि अहं दीनवत् किं वहिः धावानि ? अहं तु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ– जिस समय मेरे अज्ञान का असत् भाव था तब भोगो में आत्माका या आत्मीयताका भ्रम होनेसे मेरी प्रीति हुई, अब ज्ञानस्वभाव होकर भी-मैं दीन अर्थात भ्रमी जीवोंकी तरहे क्या आत्माके उपयोगसे बाहर परपदार्थ में दौड़ूं ? मैं तो अपनेमें अपनेलिये अपने आप स्वयं सुखी होऊं ॥

(२३)

ज्ञातृत्वं मयि सर्वेषु स्वायत्तं साम्यसंयुतम् ।
कस्य कः ज्ञातृतां दृष्ट्वा''स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–स्वायत्तं साम्यसंयुतम् ज्ञातृत्वं मयि च सर्वषु विद्यते, कस्य कः अस्ति, ज्ञातृतां दृष्टवा अहं स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ– अपने ही आधीन समतासे संयुक्त ज्ञातापन मुझमें और सबोंमें विद्यमान है, किसका कौन है, इसलिये ज्ञाता-पन को देखकर के मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(२४)

यत्रैव भासते विश्वं सोहं विश्वं न साकृतिः ।
ज्ञाता द्रष्टा स्वतन्त्रोऽहं''स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–यत्र एव विश्वं भासते सः अहं किंतु विश्वं न च साकृतिः अथवा सा आकृतिः न अहं नु ज्ञाता दृष्टा स्वतन्त्रः अस्मि ततः स्वस्य+तन्त्रः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—जहां ही सारा विश्व अर्थात् पदार्थ प्रतिभासित होता है, वह तो मैं हूं किंतु मैं विश्व नहीं हूं, और न साकार अथवा प्रतिभासित पदार्थको उस आकृति रूप हूं, मैं तो जाननेवाला देखनेवाला स्वतन्त्र हूं, सो अपने ही तन्त्र रहता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(२५)

स्वभिन्नं न हितं किञ्चिदद्वैतोऽहं हिते क्षमः ।
द्वैताश्रिता मुधा बुद्धिः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–स्वभिन्नं किञ्चित् हितं न अस्ति, अहं अद्वैतः हिते क्षमः अस्मि, द्वैताश्रिता बुद्धिः मुधा विद्यते, अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—अपने से भिन्न कुछ भी पदार्थ हितरूप नहीं है मैं अर्थात् केवल, हित कार्यमें समर्थ हूं, द्वैत अर्थात् अन्य पदार्थ व विकल्पका आश्रय करने वाली बुद्धि निष्फल होती है अतः मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(२६)

सहजानन्दभावःक्व क्वेमे रागादिवैरिणः ।
सहजानन्दसम्पन्नः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—क्व सहजानन्दभावः च क्व इमे रागादिवैरिणः अहं स्वभावतः सहजानन्दसम्पन्नः अस्मि, अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—कहां तो सहज आनन्दमय परिणाम और कहां ये राग आदि वैरी, मैं तो निश्चयसे स्वाभाविक सहजानन्दसे सम्पन्न हूं, इसलिये मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(२७)

प्रयत्नो वाञ्छया तस्माद्वातो यन्त्रं प्रवर्तते ।
स्वे तान्यारोप्य किं दुःखी स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—वाञ्छया प्रयत्नो भवति, तस्मात् वातः संगच्छति ततःयन्त्रम् प्रवर्तते, पुनः तानि स्वे आरोप्य दुःखी किं भवेयम् अहं नु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—इच्छासे प्रयत्न होता है प्रयत्न होनेसे वायु चलती है वायुसे यह शरीर रूपी यंत्र प्रवर्तित होता है, फिर उन सब प्रवर्तनोंको अपनेमें आरोपित करके दुःखी क्यों होऊं मैं तो अपनेमें अपनेलिए अपने आप सुखी होऊं ।

(२८)

पङ्गोर्दृष्टिर्यथान्धेन तथा स्वस्यैव नो तनोः ।
दर्शनं मात्रमस्म्यस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—यथा पङ्गोः दृष्टिः अन्धे न विद्यते तथा स्वस्य दृष्टिः तनोः नो समस्ति, किन्तु स्वस्य एव, अहं हि दर्शनं मात्रम् अस्मि अस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—जैसे लंगड़ेकी दृष्टि अंधेमें नहीं होती, उसी प्रकार आत्माकी दृष्टि शरीरकी नहीं है किन्तु आत्माकी है मैं तो दर्शन मात्र हूँ, इसलिये मैं अपनेमें अपने लिये स्वयं सुखी होऊं ।

(२९)

यस्मिन् ज्ञानमये यत्ने मत्तपाषाणवत्क्रमात् ।
विकल्पो नापि तत्रान्ते स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—यस्मिन् ज्ञानमये यत्ने जगत् क्रमात् मत्तपाषाणवत् क्रमात् प्रतिभाति च तत्र अन्ते विकल्पः अपि नास्तिएवं एवं ज्ञानमये स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ—जिस ज्ञानमय आत्माके यत्न होने पर यह जगत् क्रम से उन्मत्तकी तरह तथा पत्थरकी तरहै निश्चल प्रतिभासमान होता है और उस यत्नके होनेपर अन्तमें विकल्प भी नहीं रहता ऐसे ज्ञानमय आत्मामें मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(३०)

आत्मजागरणं यत्र चाभावे लोकजागृतिः ।
अहं स ज्ञानमात्रोऽस्मि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-यत्र सति आत्मजागरणं भवति च अभावे लोकजागृतिः भवति स ज्ञानमात्रः अहं अस्मि तस्मिन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ—जिसके होने पर आत्मजागरण होता है और अभाव होने पर लोक व्यवहार में जागरण होता है वह ज्ञानमात्र मैं हूं, सो अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(३१)

अहं स्वं जन्ममृत्यादि सुखं दुःखं नयाम्यहम् ।
मुक्तौ नेता गुरुस्तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अहं स्वं जन्ममृत्यादि सुखं दुःख नयामि च मुक्तौ नेता अपि अहं अस्मि, तस्मात् अहं गुरु अस्मिन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मैं अपनेको जन्म मरण आदि सुख दुःखको प्राप्त कराता हूं और मुक्तिमें ले जानेवाला भी मैं हूं, इस कारण मैं ही अपना गुरु हूं सो अब अपनेमें अपने लिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(३२)

देहे बुद्धया वपुः स्वस्य बुद्धया स्वः प्राप्स्यते मया ।
ज्ञानमात्रमतिर्मेऽस्तुः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—देहे स्वस्य बुद्ध्या मया वपुः प्राप्स्यते च स्वे स्वस्य बुद्ध्या स्वः प्राप्स्यते, अतः मे ज्ञानमात्रमतिः अस्तु च स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—"देहमें आत्मा या शरीर मैं हूं," की बुद्धि करनेसे मेरे द्वारा शरीर प्राप्त किया जावेगा, और निज आत्मामें निज आत्माकी बुद्धि करनेसे निज आत्मा प्राप्त होगा इसलिये मेरी ज्ञानमात्र बुद्धि हो और अपनेमें अपने लिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(३३)

महान् स्वभ्रांतिजः क्लेशो भ्रांतिनाशेन नंक्ष्यति ।
याथात्म्यं श्रद्दधे तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—स्वभ्रांतिजः महान् क्लेशः भ्रांतिनाशेन नंक्ष्यति तस्मात् याथात्म्यं श्रद्दधे च स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—अपने भ्रमसे उत्पन्न हुआ क्लेश, भ्रमके विनाशसे नष्ट होगा, इसलिये मैं यथार्थ स्वरूपकी श्रद्धा करूं, और अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(३४)

देहे स्वबोधता दुःखं सुखं स्वे स्वस्य चेतनम् ।
सुखं स्वायत्तमेवातः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–देहे स्वबोधता दुःखम्, स्वे स्वस्य चेतनं सुखं समस्ति च तत् सुखं स्वायत्तं एव अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–शरीरमें अहंबुद्धि होना दुःख है, आत्मामें आत्माका अनुभव होना सुख है औ वह सुख निजके ही अधीन है, इसलिये मैंअपनेमें अपनेलिये स्वयम् सुखी होऊं ॥

(३५)

तिर्यङ्नारकदेवानां देहे तिष्ठन् पृथक् तथा ।
नृदेहेऽपि नरो नाहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–यथा तिर्यङ्नारकदेवानां देहे तिष्ठन् आत्मा पृथक् तथा नृदेहे अपि तिष्ठन् अहं नरः न, अतः स्वं पृथक्कृत्य स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–जैसे तिर्यञ्च, नारकी, देवोंके शरीरमें रहता हुआ आत्मा शरीरसे भिन्न हैं उसी प्रकार मनुष्यशरीरमें भी रहता हुआ मैं मनुष्य नहीं हूं, इसलिये इस पृथक् शरीरसे अपने को भिन्न करके मैं अपनेमें अपने-लिए स्वयं सुखी होऊं ॥

(३६)

अन्योऽन्यत्वेन दुःखं स्वः स्वत्वेन सुखपूरितः ।
यतै स्वदृष्टितः स्वार्थे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय–अन्यः अन्यत्वेन दुःखं एव अस्ति स्वः स्वत्वेन सुखपूरितः समस्ति, अतः स्वदृष्टितः स्वार्थे यतै च स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ–अन्य पदार्थ अन्य होनेसे दुःख ही है निज आत्मा निज होनेसे सुखपूर्ण हो है, अतः निजदृष्टिसे निजके सत्य प्रयोजन में प्रयत्न करूं, औरअपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(३७)

आत्मलाभस्पृहैकामे तदन्यत्रास्तु मागतिः
नश्यत्वन्तर्जगच्चादः स्यां स्व स्मैस्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–मे एका आत्मलाभस्पृहा एव अस्ति तदन्यत्र मे गतिः मा अस्तु च अदः अन्तर्जगत् नश्यतु यतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ–मेरी तो एक आत्मप्राप्तिकी ही इच्छा है उससे अन्य स्थान में मेरी गति न हो, और यह अन्तर्जगत भी नष्ट हो जावे जिससे मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(३८)

यत्र चित्तस्य न क्षोभः स्वे वैकान्तेवसाम्यहम् ।
जनव्यूहे हितं किं मे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–जनव्यूहे मे किं हितं ? ततः यत्र चित्तस्य क्षोभः न भवेत् एवं स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–जनसमूहमें मेरा क्या हित है ? इसलिये जहां चित्तको क्षोभ न होवे ऐसे निज आत्मा में अथवा एकांतमें मैं रहूं और अपनेमें अपनेलिए अपने आप सुखी होऊं ॥

(३९)

हितैषी हितयन्ताऽस्मि हितज्ञोऽस्मादहं गुरुः ।
अस्यैव साक्षितायां शं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–हितैषी हितज्ञः हितयन्ता अहं अस्मि अस्मात् स्वस्य गुरुः तत्त्वतः अहं एव विद्ये अस्य एव साक्षितायां शं वर्तते अतः स्वे स्वस्मै स्वय सुखी स्याम् ॥

अर्थ–हितका चाहनेवाला हितका जाननेवाला हितरूप वर्तन में लगानेवाला मैं हूं, इस कारण स्वका गुरु वास्तवमें मैं ही हूं इसकी छत्रछायामें मैं सुखी हूं, इसलिये मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(४०)

ज्ञानं स्वमेव जानाति तदा स्वस्वामिता कुतः ।
अहमद्वैतबुद्धिः सन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—ज्ञानं स्वं एव जानाति तदा स्वस्वामिता कुतः भवेत् अतः अद्वैतबुद्धिः सन् अहं स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–ज्ञान स्वको ही जानता है तब यह स्व है यह स्वामी है इस तरहकी बात कहाँसे हो, इसलिये एक निज अद्वैतबुद्धि होता हुआ मैंअपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(४१)

ज्ञप्तिमात्रदशायां न दुःखं स्यात्कर्मनिर्जरा ।
सैषोऽहं ज्ञप्तिमात्रोऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—ज्ञप्तिमात्रदशायां दुःखं न स्यात् कर्म निर्जरा भवति स ज्ञप्तिमात्रः एषः अहं अस्मि अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ–जाननेमात्रकी दशामें दुःख नहीं है, कर्मोंकी निर्जरा होती है वह ज्ञप्तिमात्र यह मैं हूं । सोअपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(४२)

यदुपासै तदाप्तिः स्यादतः शुद्धात्मतां भजै।
शुद्धाप्तिः शांतिसम्पत्तिः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्॥

अन्वय–अहं यत् उपासै तदाप्तिः स्यात् अतः शुद्धात्मतां भजै यतः शुद्धाप्तिः शांतिसम्पत्तिः ततः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम्॥

अर्थ–मैं जिसकी उपासना करूं, उसकी प्राप्ति होती इसलिये मैं शुद्धात्माको ही भजूं क्योंकि शुद्ध आत्मभाव की प्राप्ति और शांतिरूप सम्पत्ति एकही बात है सो शुद्ध स्वरूप वाले अपनेमें अपनेलिए अपने आप सुखी होऊं॥

(४३)

संयम्याक्षाणि मुक्त्वा च कल्पनां मोहसम्भवाम्।
अन्तरात्मस्थितः क्षान्तः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्॥

अन्वय–अक्षाणि संयम्य च मोहसंभवाम् कल्पनां मुक्त्वा क्षान्तः अन्तरात्मस्थितः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम्।

अर्थ–इंद्रियोंको संयमित करके और मोह से उत्पन्न होनेवाली कल्पना को छोड़ करके क्षमाशील अन्तरात्मा में स्थित होता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं॥

(४४)

भावनाप्रभवःक्लेशो भावनातः शिवम् सुखम्।
भावयेऽतः शिवं स्वं शं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्॥

अन्वय–क्लेशः भावनाप्रभवः अस्ति च शिवं सुखं अपि भावनातः भवति अतः शिवं शं स्वं भावये च स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम्॥

अर्थ–क्लेश भावनासे उत्पन्न होनेवाला है और शिव स्वरूप सुख भी भावनासे होता है, इसलिये शिव कल्याण और सुख स्वरूप निज आत्माको भावना करूं औरअपनेमें अपनेलिये स्वयम् सुखी होऊं॥

(४५)

सारे देहिषु सर्वेषु व्यक्ताव्यक्ते बुधाज्ञयोः।
ज्ञानमात्रे चिरं तिष्ठन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्॥

अन्वय–सर्वेषु देहिषु सारे बुधाज्ञयोः व्यक्ताव्यक्ते ज्ञानमात्रे चिरं तिष्ठन् अहं स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम्॥

अर्थ–समस्त प्राणियोंमें सारभूत तत्त्व, ज्ञानीके प्रकट और अज्ञानी के अप्रकट ज्ञानमात्र भावमें चिरकाल तक ठहरता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(४६)

सद्दृष्टिज्ञानचारित्रैकत्वं मुक्तिरदः सुखम्।
तच्च ज्ञानमयं तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—सद्दृष्टिज्ञानचारित्रैकत्वं मुक्तिः अस्ति, अदः सुखं च तत् ज्ञानमयं तस्मात् ज्ञानमये स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रका एकपना मुक्ति है यह ही सत्य सुख है और वह एकत्व ज्ञानमय है सो ज्ञानस्वरुप अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(४७)

तत्त्वतो ज्ञानमात्रोऽहं क्व विकल्पावकाशता।
ततोऽहं निर्विकल्पः सन् स्वां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वब—तत्त्वतः अहं ज्ञानमात्रः अस्मि तत्र विकल्पावकाशता क्व अस्ति ततः निर्विकल्पः सन् अहं स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—वास्तवमें मैं ज्ञानमात्र हूं उस मुझमें विकल्पों का स्थान ही कहां है इसलिये अब निर्विकल्प होता हुआ मैं अपने में अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(४८)

स्वैकत्वस्य रुचिस्तस्माद्भव्यता निश्चयेन मे।
अस्वभावे कथं वृत्तः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—मे स्वैकत्वस्य रुचिः संवर्तते तस्मात् निश्चयेन मे भव्यता अस्ति पुनः अस्वभावे कथं वृत्तः अहं नु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मेरे तो निजके एकत्वमें रुचि है इसलिये निश्चयसे मेरे भव्यपना (तथा हो होनहार) है फिर ऐसी प्रवृत्तिमें जो मेरा स्वभाव नहीं कैसे लगा, मैं तो अब अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(४९)

अद्वैतानुभवः सिद्धिर्द्वैतबुद्धिरसिद्धता।
सिद्धेरन्यश्च पन्था न स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-अद्वैतानुभवः सिद्धिः द्वैतबुद्धिः असिद्धता, सिद्धेः अन्यः पन्था न अतः अद्वैते स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम्।

अर्थ—निज अद्वैतका अनुभव तथा अद्वैत परिणमन ही सिद्धि है, द्वैतबुद्धि असिद्धि है। सिद्धिका और दूसरा कोईभी मार्ग नहीं है, निज अद्वैत स्वरूप अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(५०)

स्वैकत्वं मंगलं लोके उत्तमं शरणं महत् ।
रक्षादुर्गं तदेवास्ति स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—स्वैकत्वं मंगलं, लोके उत्तमं, महत् शरणं वर्तते, तत् एव रक्षादुर्गं अस्ति, अतः स्वैकत्वमये स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—स्व का एकपन ही मंगल है लोकमें उत्तम है, महान शरण स्वरूप है, वह ही रक्षा का किला है। इसलिये स्वके एकत्व स्वरूप अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(५१)

स्वैकत्वमौषधं सर्वक्लेशनाशनदक्षकम् ।
चिंतामणिस्तदेवास्मिन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—स्वैकत्व सर्वक्लेशनाशनदक्षकम् औषधमस्ति, तत् एव चिंतामणिः अस्ति, अतः स्वैकत्वमये अस्मिन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—स्व का एकपन सर्व क्लेशोंके नाश करनेमें दक्ष औषध है व स्वैकत्व ही चिंतामणि है इस लिये स्वके एकपन स्वरूप इस निज आत्मामें मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(५२)

ज्ञायकत्वे विकारः क्व रागादेः सन्निधावपि ।
सोऽहं ज्ञायकमात्रोऽस्मि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—रागादेः सन्निधौ अपि ज्ञायकत्वे विकारः क्व अस्ति, स ज्ञायकमात्रः अहम् अस्मि, तस्मिन् ज्ञायके स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—राग आदिकी निकटता होनेपर भी ज्ञायक स्वरूपमें विकार कहां है? वह ज्ञायकमात्र मैं हूं सो उस ज्ञायक निज आत्मामें अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं।

(५३)

दुःखी किं? विवशः किं? मेऽत्रैव न्यायो विधिर्जगत् ।
सुखागारोऽप्ययं तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्यव—हे आत्मन्! दुःखी किं? विवशः किं? मे अत्र एव न्यायः अत्र एव विधिः अत्र एव जगत् अस्ति, सुखागारः अपि अयं एव अहं तस्मात् सुखस्वरूपे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—हे आत्मन्! दुखी क्यों? विवश क्यों? मेरा तो इस मुझही आत्मामें न्याय है यहां ही विधि विधान है यहां ही मेरी दुनियां है सुखका आगार भी यह ही मैं हूं इसलिये सुख स्वरूप अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(५४)

ज्ञानपिण्डोऽन्यभिन्नोऽहं निर्विकारी स्वभावतः ।
स्वतन्त्रः सहजानन्दः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अहं ज्ञानपिण्डः अन्यभिन्नः स्वभावतः निर्विकारी सहजानंदः अस्मि अतः स्वतन्त्रः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मैं ज्ञानका पिण्ड अन्यसे भिन्न स्वभावसे विकार रहित स्वाभाविक आनन्दमय हूं इसलिये स्वके ही आश्रित होता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिए स्वयं सुखी होउं ।

(५५)

निजचेष्टाफलं ह्यन्ये तृष्टिः संसार उच्यते ।
विज्ञाय तत्त्वतस्तत्वं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—हि निजचेष्टाफलं अन्ये अस्ति इति दृष्टिः संसारः उच्यते, अतः तत्त्वं विज्ञाय स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ— निश्चयसे "अपनी चेष्टाका फल अन्य पदार्थमें है" इस दृष्टिको ही संसार कहा जाता है, अतः वास्तवमें तत्त्वको जानकर मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयम् सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(५६)

अनन्तज्ञानसौख्यादिगुणपिण्डोऽपि तृष्णया ।
भ्रमाणि दीनवत्कस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अहं अनन्तज्ञानसौख्यादिगुणपिंडः अपि तृष्णया दीनवत् कस्मात् भ्रमाणि ? स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मैं अनन्त ज्ञान सुख आदि गुणोंका पिण्ड होता हुआ भी तृष्णासे दीनकी तरह क्यों घूमूं ? अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(५७)

ज्योतिर्मयो महानात्मा वञ्चितोऽक्षविषैरहम् ।
सम्बन्धमात्ररम्यैस्तु····स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—एषः अहं आत्मा ज्योतिर्मयः महान् अस्मि तु सम्बन्धमात्ररम्यैः अक्षविषैः वञ्चितः अधुना स्वयं महति स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—यह मैं आत्मा ज्ञानमय और महान् हूं, परन्तु सम्बन्ध मात्रसे रमणीक इन्द्रियोंके विषयरूप विषकेद्वारा मैं ठगाया गया, अब मैं स्वयं महान् अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(५८)

पूर्णदृग्ज्ञानसत्सौख्यी सिद्धात्मा देशतोऽप्यहम् ।
पूर्णश्च भवितुं शक्यः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—सिद्धात्मा पूर्णदृग्ज्ञानसत्सौख्यी अहं अपि देशतः दृग्ज्ञानसत्सौख्यी च पूर्णः भवितुं शक्यः अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—सिद्धात्मा पूर्णदर्शन ज्ञानशक्ति सुखस्वरूप है मैं भी एक देशसे व्यक्तिकी अपेक्षा दर्शन ज्ञानशक्ति सुख दशा रूप हूँ और पूर्ण होनेकेलिये समर्थ हूँ अतः अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(५९)

निर्द्धूयज्ञानजान्धं स्वं दृष्ट्वा ध्यानाग्निना विधिम् ।
दहानि निष्कलङ्कः सन्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अज्ञानजान्धं निर्द्धूय स्वं दृष्ट्वा ध्यानाग्निना विधिम् दहानि च निष्कलङ्कः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाले अन्धकारको नष्ट करके अपने आत्माको देख करके ध्यानरूपी अग्निकेद्वारा कर्म क्रियाको जलाऊँ और अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(६०)

रागादि पीडयेत्तावन्नाविष्टो ज्ञानसागरे ।
अतो ज्ञानेऽवगाह्याहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—रागादि तावत् पीडयेत् यावत् ज्ञानसागरे न आविष्टः अतः ज्ञाने अवगाह्य अहं स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—राग आदि विभाव तबतक पीड़ा करलें जबतक ज्ञानरूप समुद्रमें प्रविष्ट नहीं हुआ इसलिये ज्ञानमें प्रवेश करके मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(६१)

स्वभावः सिद्धतैते तु पर्यायाः कर्मविक्रमाः ।
त्वहं स्वविक्रमं कुर्यां स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—सिद्धता स्वभावः तु एते पर्यायाः कर्मविक्रमाः संति अहं तु स्वविक्रमं कुर्याम् च स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—अपने गुणोंकी प्राप्ति रूप सिद्धता स्वभाव है परन्तु ये पर्यायें कर्मके विक्रम हैं, मैं तो स्वका विक्रम-पुरुषार्थ करूं और अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

"समाप्तोऽयम् प्रथमोऽध्यायः"

इति श्री मद्ध्यात्मयोगिना शान्तमूर्त्तिना न्यायतीर्थेण सिद्धांतन्यायसाहित्य शास्त्रिणा पूज्यश्री १०५ क्षुल्लकमनोहरवर्णिना सहजानन्द स्वामिना विरचितायां सहजानन्दगीतायामात्मशक्तिपरिणति प्ररूपकः प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ओंनमः सिद्धेभ्यः

द्वितीयोऽध्याय

प्रारभ्यते

(१)

यः संयोगजया दृष्ट्या भाति संयोगजः किल ।
तौ नाहंत मे न तौ हित्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।

अन्वय–संयोगजया दृष्ट्या संयोगजः भाति किल तौ अहं न मे तौ न अतः तौ हित्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।।

अर्थ–संयोगसे होने वाली दृष्टिके द्वारा जो संयोगज पदार्थ प्रतिभासित होता है निश्चयसे वह दोनों अर्थात संयोगज दृष्टि व संयोगज पदार्थ मैं नहीं हूं । मेरे वे दोनों नहीं हैं, इसलिये उनसे लक्ष्य हटाने रूप उपाय से उन दोनोंको त्यागकर अपनेमें अपनेलिये स्वयम् सुखी होऊं ।।

(२)

नाहमन्यत्र नान्यस्य न नष्टो न वहिर्गतः ।
किन्तु ज्ञायकभावोऽहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।

अन्वय–अहं अन्यत्र न अन्यस्य न न नष्टः न वहिर्गतः किंतु ज्ञायक भावः एषः अह स्वे स्वस्मै स्वयम् सुखो स्याम् ।।

अर्थ–मैं अन्य जगह नहीं हूं, अन्यका नहीं हूं न नष्ट हुआ हूं न बाहर गया हूं किन्तु ज्ञायक भाव स्वरूप मैं यह मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयम् सुखी होऊं ।।

http://www.jainkosh.org

(३)

विषवद्विषयाँस्त्यक्त्वा पृथक्कृत्य वपुर्धिया ।
स्वात्मानमेव पश्यानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।

अन्वय–विषवत् विषयान् त्यक्तवा वपुः धियापृथक् कृत्यस्वात्मानं एव पश्यानि च स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।।

अर्थ–विषकी तरह विषयोंको छोड़कर शरीरको बुद्धिके द्वारा पृथक् करके अपने स्वात्माको ही देखूं और अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ।

(४)

न मे वर्णो न मे जाति र्न मे देशो न विग्रहः ।
नैषामहं त्वहं त्वेकः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।

अन्वय–मे वर्णः न मे जाति न मे देशः न मे विग्रहः न च एषाः नु अहं न तु अहं एकः तस्मिन् एकस्मिन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।।

अर्थ–मेरे वर्ण नहीं मेरे जाति नहीं मेरे देश नहीं मेरे शरीर नहीं और निश्चय से इनका मैं नहीं हूं परन्तु मैं एक हूं उस एक अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ।।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(५)

कल्पना यत्र भासन्ते सोऽहं नास्थिरकल्पनाः ।
श्रद्धामृतं पिवानीदं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—यत्र कल्पना भासन्ते स अहं किंतु अस्थिर कल्पनाः अहं न इदं श्रद्धामृतं पिवानि च स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—जहां कल्पनाएं भासमान होती हैं वह मैं हूं परन्तु अस्थिर कल्पनाएं मैं नहीं हूं। इस श्रद्धा रूप अमृत को पीऊँ और अपनेमें अपनेलिये स्वयम् सुखी होऊं ॥

(६)

भिन्नदर्शी भवेद्भिन्नः संकरैषी च संकरः ।
तत्वतः सर्वतः प्रत्यक् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—भिन्नदर्शी भिन्नः भवेत् च संकरैषीसंकरः स्यात् तत्वतः अहं सर्वतः प्रत्यक् तस्मिन् विविक्ते स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—जगत्से अपनेको भिन्न देखनेवाला भिन्न हो जाता है और संकर (मिश्रित) की चाहवाला संकर हो जाता है तत्वसे मैं सर्वसे विविक्त (पृथक) हूँ उस विविक्त अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(७)

न मे लोको न चाज्ञातोऽनष्टो नष्टे विकल्पिते ।
तदित्थं ज्ञानमात्रोऽहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—लोकः मे न न च अज्ञातः विकल्पिते नष्टे अनष्टः तत् इत्थं ज्ञानमात्रः अहं स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—लोक मेरा नहीं है और वह लोक अज्ञात भी नहीं है तथा विकल्पित भाव लोकके नष्ट होनेपर मैं नष्ट नहीं होता इस प्रकार ज्ञानमात्र मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयम् सुखी होऊं ॥

(८)

देहे स्थित्वापि न स्पृष्टो नानाकारो निराकृतिः ।
जानन् सर्वं न सर्वोऽहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अहं देहे स्थित्वा अपि तेन नु स्पृष्टः नानाकारः अपि निराकृतिः सर्वं जानन् अहं सर्वः न एव शुद्धे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मैं देहमें ठहरकर भी देहसे छुआ हुआ नहीं हूँ नाना आकार वाला होता हुआ भी निजकी निरपेक्ष आकृति वाला नहीं हूं सबको जानता हुआ मैं सबरूप नहीं हूं इस प्रकार शुद्ध अपनेमें अपनेलिये स्वयम् सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(९)

विभक्तैकत्ववोधस्य न स्पर्शः पुण्यपापयोः ।
सैववस्तुस्थितिर्मेऽस्तु स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—विभक्तैकत्ववोधस्य ममपुण्यपापयोः स्पर्शः न सा एववस्तु स्थितः मे अस्तु यतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—सर्वसे विभक्त और अपनेमें एकत्वके बोध वाले मुझ आत्मा के पुण्य व पाप दोनों का स्पर्श नहीं है अहो वही वस्तु स्थिति मेरी होओ जिससे मैं अपनेमें अपने लिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(१०)

नाना मतानितत्त्वेषु विवादे न प्रयोजनम् ।
मुक्त्वाऽन्यत् स्वं पश्येयं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—तत्त्वेषु नानामतानि सन्ति तत्र विवादे प्रयोजनं न अहं तु अन्यत् मुक्त्वा स्वं पश्येयम् च स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—तत्त्वोंमें नाना प्रकारके मत (मन्तव्य) हैं उस विवाद में कुछ प्रयोजन नहीं है मैं तो परपदार्थोंको (लक्ष्यसे) छोड़कर अपनेको देखूं और अपनेमें अपनेलिये स्वयम् सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(११)

हर्षादिवासनाजन्यमौपाधिक विनश्वरम् ।
तद्भिन्नं स्वं प्रपश्येयं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—एतत् अन्त जगत् हर्षादिवासनाजन्यम् औपाधिकविनश्वरम् अस्ति तद्भिन्न स्वं प्रपश्येयम्, च स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ—यह कल्पित जगत् हर्षादि वासनाओंसे उत्पन्न होने वाला तथा औपाधिक विनाशीक है उससे भिन्न अपने को देखूं औरअपनेमें अपनेलिए स्वयम् सुखी होऊं ॥

(१२)

वासनान्ते न संसारः संसारत्यागएषहि ।
स्वदृष्टया वासनान्तोऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—वासनान्ते संसारः न शिष्यते हि एषः संसार त्यागः अस्ति वासनान्तः स्वदृष्ट्या भवति अतः स्वदृष्टि विधाय स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ—वासनाका विनाश होनेपर संसार नहीं रहता निश्चयसे यही (वासना का विनाश) संसारका त्याग है । वासनाका अन्त निजदृष्टिसे होता है अतः मैं स्वदृष्टिको करके मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयम् सुखी होऊं ॥

Version 1

(१३)

कामे बोधरिपावर्थेऽनर्थे तन्मूलधर्मके ।
त्यक्त्वादरं स्वमर्च्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–बोधरिपौ कामे अनर्थे अर्थे तन्मूलके आदरं त्यक्त्वा स्वं अर्चेयम् च स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–ज्ञानके वैरी काममें, अनर्थरूप धनमें तथा काम, अर्थके मूल पुण्यमें आदरको छोड़कर अपने को पूजूं और मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयम् सुखी होऊं ॥

(१४)

सुखारिर्दुर्गतिर्दैन्यं पापं तद्धेतुकं ततः ।
दूरं वसानि पापेभ्यः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–दैन्यं सुखारिः दुर्गतिः अस्ति च पापं तद्धेतुकं अस्ति ततः पापेभ्यः दूरं वसानिम् च स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–दीनरूपभाव, सुखका वैरी है तथा स्वयं दुर्गतिस्वरूप है और पाप(अशुद्धोपयोग) दैन्यका कारण है इसलिये मैं उन पापोंसे दूर रहूँ और अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(१५)

कार्यं हेतु र्न चान्यन्मे भाति विश्वं स्वसत्तया ।
ज्ञानं सुखं परस्मान्न स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–मे कार्यं च हेतुः अन्यत् न अस्ति विश्वं स्वसत्तयाभाति हि ज्ञानं च सुखम् परस्मात् न प्रभवति ततः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–मेरा कार्य और कारण अन्य कुछ नहीं है विश्व तो स्वयं ही सत्तासे प्रतिभासमान होता है निश्चयसे ज्ञान और सुख परपदार्थसे होते ही नहीं अतः मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप ही सुखी होऊं ॥

(१६)

जीवो दृश्यो न यो दृश्योऽजीवो वा कोऽपि मे न हि ।
कस्मै सीदानि नश्यानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–यः जीवः स दृश्यः न यः दृश्यः सः अजीवः अस्ति वा मे कः अपि न अस्ति हि कस्मै सीदानि नश्यानि अहं नु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–जो जीव है वह दृश्य नहीं जो दृश्य है वह जीव नहीं अथवा मेरा कोई भी नहीं है फिर किसके अर्थ खेद खिन्न होऊं ? बरबाद होऊं, मैं तो अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(१७)

परः कोऽपि हितो मे नो यो हितोऽहं न मूर्तिकः ।
चिन्तने कस्य नश्यानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—परः कः अपि मे हितो नो वर्तते: यः हितः स अहं एवं मूर्तिकः न अतः कस्य चिन्तने नश्यानि ? स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—परपदार्थ कोई भी मेरा हितरूप नहीं है। जो हित रूप स्वरूप हैं वह मैं ऐसा मूर्तिक नहीं अतः किसके चिंतनमें बरबाद होऊं अपनेमें अपनेलिये सुखी होऊं ॥

(१८)

यावत्प्रवर्तनं लोके तत्तेषामज्ञताफलम् ।
निवृत्तिर्ज्ञान साम्राज्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—लोके यावत् प्रवर्तनं तत् तेषां अज्ञताफलम् अस्ति निवृत्तिः ज्ञान साम्राज्यं समस्ति अतः साम्राज्येन स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—लोकमें जितनी प्रवृत्ति है वह उनकी अज्ञता का फल है और निवृत्ति ज्ञानके साम्राज्यरूप है अतः अपने साम्राज्यके द्वारा अपनेमें अपनेलिये स्वयम् सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(१९)

कर्म कर्त्रादि कल्पाः स्यु देहादिष्वनुबन्धिनः ।
पूर्यते तै र्न कश्चिन्मे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-कर्म कर्त्रादि कल्पाः देहादिषु अनुबन्धिनः स्युः तैः मे कश्चित् न पूर्यते अहं हि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मैं इसको करता हूं, नहीं करता हूं आदि विकल्प शरीर आदिमें सम्बन्ध परम्परा करने वाले होते हैं उनसे मेरा कोई भी कुछ भी पूरा नहीं पड़ता मैं तो अपनेमें अपने लिये स्वयं अपने आप सुखी होऊं ॥

(२०)

इच्छाबन्धो न मे हानि ज्ञानमात्रस्य दर्शिनः ।
पूर्यते ज्ञानमात्रेण, स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—इच्छा बन्धः ज्ञानमात्रस्य दर्शिनः मे हानिः न यतः ज्ञानमात्रेण मे तत्त्वं पूर्यते अतः ज्ञान स्वरुपे स्वे स्वस्मै स्वयम् सुखी स्याम् ॥

अर्थ—इच्छा ही बन्धन है ज्ञानमात्र दृष्टा होते हुए मेरे कोई हानि नहीं क्योंकि ज्ञानमात्र भावसे ही मेरा तत्त्व पूर्ण होता है इसलिये ज्ञान स्वरूप अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(२१)

नाना चेष्टै न मे लाभश्चेन्न चेष्टै न मे क्षतिः।
ज्ञान मात्रैव चेष्टा मे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—नाना चेष्टै चेत् मे लाभः न, न चेष्टै चेत् मे क्षतिः न यतः मे चेष्टा ज्ञानमात्रा एव अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम्।

अर्थ—मैं नानाप्रकार चेष्टा करूं तो मेरे लाभ नहीं, न चेष्टा करूं तो मेरी हानि नहीं क्योंकि मेरी चेष्टा तो ज्ञानमात्र ही है अतः ज्ञानस्वरूप निजमें निजके अर्थ स्वयं सुखी होऊं।

(२२)

तत्त्वज्ञो जायते मूको लुब्धैस्त्यक्तमिदंछलात्।
शांतिस्तु तत्त्वतस्तस्मिन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—तत्त्वज्ञः मूकः जायते इति छलात् लुब्धैः इदं त्यक्तम् तु तत्त्वतः तत्त्वे एव शांतिः समस्ति अतः तत्त्ववति स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—तत्त्वका जानने वाला मूक (गूंगा) होजाता है इस छलसे मानों विषय लोलुपी प्राणियोंने यह तत्त्व उपयोगसे अलग कर दिया है परन्तु वास्तवमें तत्त्वमें ही शांति है इसलिए तत्त्ववान इस अपनेमें अपनेलिए अपने आप सुखी होऊं ॥

(२३)

तत्त्वज्ञ आलसोभूतो लुब्धैस्त्यक्तमिदं छलात्।
नैष्कर्म्यएव शांतिस्तु स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—तत्त्वज्ञः आलसः भूतः इति छलात् लुब्धै इदं त्यक्तम् तु नैष्कर्म्ये एव अस्ति शांति अतः नैष्कर्म्ये मये स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—तत्त्वका जाननेवाला आलसी हो जाता है इस छलसे मानों विषय लोलुपी प्राणियोंने यह तत्त्व उपयोगसे अलगकर दिया है परन्तु शांति नैष्कर्म्य अवस्थामें ही है अतः नैष्कर्म्य रूप अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(२४)

मनो मे न स्वभावोऽहं मनः कार्यं न तत्फलम्।
औपाधिकमसत्स्वेऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—मनः मे स्वभावः न च अहं मनः कार्यं न वा तत्फलं न मनः औपाधिकं अस्ति च तत् स्वे असत् अतः निरूपाधौ स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मन मेरा स्वभाव नहीं और मैं मनका कार्य भी नहीं अथवा मनका फल भी नहीं, मन तो औपाधिक है और वह निजमें किसी गुणादि रूप नहीं अतः उपाधि रहित अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(२५)

यत्रैवभाति रागादिः सोऽहं रागादि नैव हि ।
रागादौ निर्ममस्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—रागादि यत्रभाति स एव अहं हि रागादि अहं नैव तस्मात् रागादौ निर्ममः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—राग आदि भाव जहां प्रतिभासमान होता है वह तो मैं हूं परन्तु रागादि मैं नहीं हूं इसलिये राग आदि भावों में ममता रहित होता हुआ अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(२४)

अन्यथानुपपत्तेः स्या द्रागादेः कर्म कर्तृ हि ।
तत्कर्मव्याहतिर्ज्ञप्तौ स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अन्यथानुपपत्तेः कर्म रागादेः कर्तृ स्यात् हि ज्ञप्तौ तत् कर्म व्याहृतिः अतः ज्ञप्तिमति स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ—अन्यथा अर्थात् अभाव में न होने से कर्म (क्रिया) रागादिका कर्ता होओ परन्तु निश्चयसे निज क्रिया जो ज्ञप्ति है उसमें उस क्रियाका अभाव है इसलिये मैं ज्ञप्तिमान इस अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(२७)

जागृतिः शयनं पानमत्तिर्वाग्दर्शनं श्रुतिः ।
ज्ञप्तिक्रियस्यकिं कृत्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—ज्ञप्तिक्रियस्य मे जागृतिः शयनं पानं अत्तिः वाक् दर्शनं श्रुतिः आदि किं कृत्यं अस्ति अहं हि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—ज्ञप्ति ही है क्रिया जिसकी ऐसे मुझ आत्माके जागरण शयन पान भोजन वचन दर्शन श्रवण आदि क्या कृत्य हैं ? नहीं तब फिर मैं तो अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(२८)

सङ्कल्पेऽजनि संसारो ज्ञाने नश्यति कल्पितः ।
निर्विकल्पे रतोभूत्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—सकल्पे संसारः अजनि च कल्पितः सः संसारः ज्ञाने नश्यति अतः निर्विकल्पे रतः भूत्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—सङ्कल्पमें ही संसार पैदा हुआ और कल्पित वह संसार, ज्ञान होते ही नष्ट हो जाता है इसलिये निर्विकल्प स्वरूप ज्ञानमें रत होकर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(२९)

परायत्ताः परार्थाः स्वा यत्तं ज्ञानस्य वेदनम् ।
पराप्तये नधावानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—परार्थाः परायत्ताः सन्ति ज्ञानस्य वेदनं स्वायत्तं समस्ति अतः पराप्तये नधावानि च स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—पर पदार्थ उन्हीं परके अधीन हैं ज्ञानका वेदन स्वके अधीन है इसलिए मैं पर पदार्थ की प्राप्तिकेलिये नहीं दौड़ूं और अपनेमें अपनेलिये स्वयम् सुखी होऊं ॥

(३०)

राज्ये क्लेशः क्षणं यत्नो भिक्षा वृत्तौ तु तत्वतः ।
तत्वं हि नोभयत्रास्ति स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—राज्ये महान् क्लेशः च भिक्षा वृत्तौ क्षणं यत्नः अस्ति । तु तत्त्वतः तत्त्वं उभयत्र न अस्ति अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—राज्यमें महान् क्लेश है और भिक्षावृत्तिमें क्षणमात्र का प्रयत्न है परन्तु वास्तवमें तत्व दोनों जगह नहीं है अतः मैं तो अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(३१)

परस्थितेः परं स्थानं पराभावो हि स्वस्थितेः ।
तत्वं तु नोभयत्रास्ति स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—परस्थितेः परं स्थानम् लभ्यते च स्वस्थितेः पराभावः भवति तु तत्त्वं उभयत्र न अस्ति अतः स्थिति यत्नम् विहाय स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—पर पदार्थमें उपयोगद्वारा ठहरनेसे पर स्थान प्राप्त होता है और निजमें उपयोग ठहरानेसे परका अभाव होता है परन्तु तत्त्व दोनों प्रयत्नोंमें नहीं है इसलिये उपयोग ठहरानेके प्रयत्नको छोड़कर मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(३२)

जनौघे वाङ्मनः कर्म चैकाग्र्यावसरोवने ।
तत्वं तु नोभयत्रास्ति स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—जनौघेवाङ्मनःकर्म भवति च वने ऐकाग्र्यावसरः अस्ति तु तत्त्वं उभयत्र न अस्ति ततः वसति विकल्पं विहाय स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मनुष्यके समूह होनेपर वचन मनकी प्रवृत्ति होती है व वनमें एकाग्रता का अवसर होता है परन्तु तत्त्व दोनों स्थानमें नहीं है इसलिए आवासके विकल्पको छोड़कर अपनेमें अपनेलिये स्वयम् सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(३३)

ज्ञान दृष्टौ क्व मोक्षाध्वा क्वार्थः कामः क्व धर्मकः ।
सहजानन्द दृष्टिः सन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—ज्ञान दृष्टौ क्व मोक्षाध्वा क्व अर्थः क्व कामः क्व धर्म कः ततः सहजानन्द दृष्टिः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—ज्ञानदृष्टि होने पर कहाँ तो मोक्षका मार्ग है (खोजका कष्ट है) कहां धन है कहां काम है कहाँ पुण्य है ज्ञानदृष्टि तो सहज आनन्द स्वरूप है अतः सहज आनन्दकी दृष्टि वाला होता हुआ मैं अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(३४)

किं कृत्यं क्व रमै चित्तमस्थिरं चाहितं जगत् ।
ज्ञानमात्रे रतो भूत्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—किं कृत्यं क्व चित्तं रमै जगत् अस्थिरं च अहितं अस्ति अतः ज्ञान मात्रे रतः भूत्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मुझे यहाँ करने योग्य कार्य क्या है कहाँ चित्त लगाऊं यह जगत् तो अस्थिर और मेरे हितरूप नहीं है इसलिये मैं तो ज्ञानमात्रमें लीन होकर अपने में अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(३५)

कर्तृत्वं न स्वभावो मे क्रिया एता उपाधितः ।
वात वच्छुष्क पर्णस्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—मे कर्तृत्वं स्वभावः न एताः क्रियाः उपाधितः शुष्कपर्णस्य । वातवत् भवन्ति अतः ज्ञातरि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मेरा कर्तापन स्वभाव नहीं है ये क्रियायें उपाधिसे होती हैं जैसे सूखे पत्ते में स्वयं क्रिया नहीं परन्तु वायु के आघात से सूखा पत्ता भी गतिशील होता है इस लिये जाननेकी क्रिया वाले अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(३६)

वृत्ति दृष्टौ तपो व्यर्थं निवृत्तौ न क्षतिः कुतः ।
ज्ञप्तिरेव निवृत्तिश्च स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—वृत्तिदृष्टौ तपः व्यर्थ अस्ति निवृत्तौ कुतः अपि क्षतिः न अस्ति च निवृत्तिः ज्ञप्तिः एव अतः ज्ञप्तिमये स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ—प्रवृत्तिकी ओर दृष्टि होनेपर तप व्यर्थ है । निवृत्ति रूप उपयोगमें कहींसे भी हानि नहीं और वह निवृत्ति जानने रूप दशा ही है अतः ज्ञप्तिमय अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(३७)

परे दृष्टे दृष्टः न स्वः स्वे दृष्टे न विकल्पना ।
अविकल्पे न सन्तापः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—परे दृष्टे स्वः दृष्टः न भवति स्वे दृष्टे विकल्पना न भवति अविकल्पे सन्तापः न भवति अतः अविकल्प स्वरूपे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—परके देखे जानेपर स्व देखा रहा नहीं रहता। स्वके देखे रहनेपर अन्य कुछ भी कल्पना नहीं रहती कल्पनाओंके अभावमें सन्ताप नहीं होता इसलिये निर्विकल्प स्वरूप अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(३८)

मयि सौख्यं मया मे मत् ज्ञप्ति भिन्नं न साधनम् ।
आगृह्णानि कथं वृत्तौ स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—मे सौख्यं मया मत् मयि विद्यते तस्य साधनम् ज्ञप्ति भिन्नम् अन्यत् न अस्ति तदा अहं वृत्तौ कथं आगृह्णानि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मेरा सुख मेरेद्वारा मुझसे मुझमें है उसका साधन जाननेकी क्रियासे भिन्न और कुछ नहीं है तब मैं वृत्तिमें क्या आग्रह करूं। अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(३९)

नाहं देहो न जातिर्मे न स्थानं नच रक्षकाः ।
गुप्तं ज्ञानं प्रपश्यानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अहं देहः न मे जातिः न मे स्थानं न च मे रक्षकाः न अहं तु गुप्तं ज्ञानं प्रपश्यानि च स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मैं देह नहीं हूं मेरी जाति नहीं है मेरा स्थान नहीं है और मेरे रक्षक भी कोई नहीं है मैं तो अपने गुप्त अर्थात् जो दूसरोंके द्वारा जाना नहीं जा सकता ऐसे ज्ञानको देखूं और अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(४०)

क्वान्योऽहं क्व च चिंता क्व क्वैकाग्र्यं क्वशुभाशुभम् ।
इमे स्वस्माच्च्युते स्तर्काः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—क्व अन्यः क्व अहं च क्व चिंता क्व ऐकाग्र्यं क्व शुभाशुभम् इमे स्वस्मात् च्युतेः तर्काः सन्ति अहं अहं हि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—कहां अन्य है कहां कहां मैं हूं और कहां चिंता कहां एकाग्रता कहां शुभ कहां अशुभ ये सब अपने आपसे च्युत होनेसे तर्क होते हैं मैं तो अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(४१)

को दूरे कश्च सामीप्ये को बाह्ये को मयि स्थितः ।
ज्ञानमात्रमहं यस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—कः दूरे च कः सामीप्ये कः बाह्ये कः मयि स्थितः अस्ति यस्मात् अहं ज्ञानमात्र अस्मि तत् एव च अहं स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—कौन दूर है और कौन समीप है और कौन मुझमें स्थित है क्योंकि मैं तो ज्ञान मात्र हूं और इसीलिये मैं निजमें निजार्थ स्वयम् सुखी होऊं ॥

(४२)

सञ्चितं कर्म चेदस्तु तेन स्पृष्टोऽपि नो ह्यहम् ।
अद्वैतोऽहमयं तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—सञ्चितं कर्म अस्ति चेत् अस्तु हि तेन अहं स्पृष्टः अपि नो अस्मि अयं अहं अद्वैतः एव अस्मि तस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयं सुख स्याम् ॥

अर्थ—सञ्चित हुआ कर्म है तो होओ निश्चयसे मैं उसके द्वारा छुआ हुआ भी नहीं हूं यह मैं तो अकेला अद्वैत हूं इसलिये मैं अपने आप अपनेमें अपनेलिये सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(४३)

ग्रामे वने निवासो मे विकल्पोऽनात्मदर्शिनः ।
स्वे ज्ञाने ज्ञस्य वासोऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—मे ग्रामे निवासः मे वनः निवासः एष विकल्पः अनातमदर्शिनः भवति हि ज्ञस्य मम वासः ज्ञाने स्वे वर्तते अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मेरा ग्राम में निवास है मेरा वन में निवास है यह विकल्प अनात्म दर्शी (अज्ञानी) के होता है निश्चयसे आत्मदर्शीका निवास ज्ञानमय स्वमें होता है इसलिये मैं इस ही ज्ञानमय स्वमे स्वके लिये स्वयम् सुखी होऊं ॥

(४४)

यातायाताणु पुञ्जोऽयं देहोऽहं स्थिरः परः ।
मे प्रवेशोन कस्मिंश्चित् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अयं देहः यातायाताणु पुञ्जः अस्ति तु अहं स्थिरः परः अस्मि मे कस्मिंश्चित् प्रवेशः न अस्ति च कस्य चित् मयि प्रवेशः न अस्ति अतः अहं स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—यह देह यात आयात अणुओंका समूह है परन्तु मैं स्थिर और सारभूत अथवा देहादिसे जुदा द्रव्य हू मेरा किसी भी अन्य द्रव्यमें प्रवेश नहीं है और किसी भी अन्य द्रव्यका मुझमें प्रवेश नहीं है इसीलिये मैं अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(४५)

व्यवहारे परावस्था निश्चये ज्ञानमात्रता ।
ज्ञानमात्रे पराशांतिः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—परावस्था व्यवहारे एव निश्चये ज्ञानमात्रता अस्ति । ज्ञानमात्रे परा शाँतिः अस्ति । अतः ज्ञानमात्रे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—पर पदार्थकी अवस्था अथवा आत्मकी विभाव अवस्था या आत्मा की किमाकारक दशा व्यवहार में ही है निश्चय में तो ज्ञानमात्र अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(४६)

रागादिवर्णतः प्रत्यग्ज्ञाते ते प्राप्स्यामि शंशिवम् ।
विकल्पो विघ्नकृद्यातु स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—रागादिवर्णतः प्रत्यक् मयि ज्ञाते सति शिवं शं प्राप्स्यामि विघ्नकृत् विकल्पः यातु अहं हि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—रागादि विभाव व वर्णरसादिसे भिन्न मेरे जान लिये जानेपर शिव स्वरूप सुख प्राप्त करूंगा विघ्न करने वाला विकल्प जाओ हटो मैं तो स्वयम् स्वके लिए स्वमें सुखी सुखी होऊं ॥

(४७)

देशो देहश्च भिन्नात्मा विकारस्तस्य योगतः ।
सर्वे भिन्नाः स्वतस्तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—देशः देहः च भिन्नात्मा तस्य योगतः विकारः एते सर्वे स्वतः भिन्नाः सन्ति तस्मात् परदृष्टि विहाय स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—देश देह और परमात्मा तथा परके आश्रयसे होने वाला विकार ये सब निज आत्मासे भिन्न है इसलिये परदृष्टिको छोड़कर स्वयं ही अपनेमें अपनेलिए अपने आप सुखी होऊं ॥

(२२)

नाकारो न विकल्पो नद्वैविध्यं न विपत्तयः ।
स्वः स्व एव शिवस्तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—स्वे न आकारः न विकल्पः न द्वैविध्यं न विपत्तयः सन्ति स्वे शिवः स्वः एव तस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—स्वमें स्वयं कोई आकार नहीं न विकल्प है न द्विविध भाव है न विपत्तियां हैं स्वमें तो शिवस्वरूप स्व है इसलिये मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(४९)

कष्टे प्राणानुपेक्षन्ते ज्ञानं रक्षन्ति योगिनः ।
ज्ञानं ज्ञाय प्रियं तत्स्वे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—योगिनः कष्टे प्राणान् उपेक्षन्ते च ज्ञानं रक्षन्ति हि ज्ञाय ज्ञानं प्रियं भवति तत् स्वे अस्ति अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—योगीजन कष्ट उपसर्ग होनेपर प्राणोंकी उपेक्षा करते हैं और ज्ञानको रक्षित करते हैं निश्चयसे ज्ञानी के लिये ज्ञान ही प्रिय है वह ज्ञान अपनेमें ही तो है इसलिये अब अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(५०)

ज्ञानमस्तीति कर्तृत्वं भोक्तृत्वं च ततोऽन्यके ।
त्रिकालेऽपि न तत्तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—ज्ञानं अस्ति इति कर्तृत्वं च ज्ञानं अस्ति इति भोक्तृत्वं अस्ति ततः अन्यके अर्थे त्रिकाले अपि तत् न अस्ति तस्मात् स्वयं स्वस्मै स्वे सुखी स्याम् ॥

अर्थ—ज्ञान है यह ही तो कर्तृत्व है और ज्ञान है यह ही भोक्तृत्व है उससे भिन्न अन्य पदार्थमें तीन कालमें भी वह अर्थात् कर्तृत्व और भोक्तृत्व नहीं है इसलिये स्वयं ही मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(५१)

दृश्यं न दर्शकस्तत्त्व उभे संयोगजे दशे ।
किंतु ज्ञायक भावोऽहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—न दृश्यं तत्त्वं न दर्शकः तत्त्वं उभे संयोगजे दशे स्तः किंतु अहं ज्ञायक भावः अस्मि अतः ज्ञायके स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—न तो यह दृश्यमान् जगत तत्त्व है और न ऐसा देखने वाला तत्त्व है दोनों संयोगसे उत्पन्न होने वाली दशाएं हैं किंतु मैं तो ज्ञायकभावस्वभावी हूं सो ज्ञायक स्वरूप अपने आत्मामें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(५२)

यदा देहोऽपि नैवाहं नृस्त्र्यादेस्तर्हि का कथा ।
ज्ञान मेवास्ति देहो मे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—यदा देहः अपि अहं नैव तर्हि नृस्त्र्यादेः कथा का मे ज्ञानं एव देहः अस्ति अतः ज्ञान शरीरिणि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—जब देह ही मैं नहीं तब मनुष्य स्त्री आदि होनेकी तो कथा ही क्या है मेरा तो ज्ञान ही देह है इसलिये ज्ञान शरीरी निज आत्मामें निजके अर्थ अर्थात निज ही जिसका फल पा सकता है स्वयं सुखी होऊं ॥

Version 1

(५३)

यत्रवासो रतिस्तत्र तत्रैकत्वं ततोनिजे।
उषित्वा ज्ञान दृष्ट्याहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय– उपयोगस्य आत्मनः यत्र वासः भवति तत्र रतिः भवति यत्र रतिः भवति तत्र एकत्वं भवति ततः अहं निजे ज्ञानदृष्ट्या उषित्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–उपयोग-स्वरूप आत्माका जहाँ वास होता है वहाँ रति हो जाती है जहाँ रति होती है वहाँ एकपन हो जाता है इसलिये मैं निज आत्मामें ज्ञान दृष्टिकेद्वारा निवास करके अपनेमें अपने अर्थ स्वयम् सुखी होऊं ॥

(५४)

यज्ज्ञानेन जगन्मन्ये तन्न मे किं तदादृतिः।
स्वादृतिः सा स्व वृत्तिर्हि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–यज्ज्ञानेन अहं जगत् मन्ये तत् मे न पुनः किं तदादृतिः स्यात् च स्वादृतिः सा एव या स्ववृत्तिः अतः हि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–जिस विशेषज्ञानकेद्वारा मैं जगत को मान रहा हूँ वह ज्ञान ही मेरा सहज भाव नहीं है तो फिर क्या जगत् में आदर हो ? और स्वका आदर वह ही है जो स्वमें वृत्ति हो इसलिये नियमसे अब मैं अपनेमें ही रहकर अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

(५५)

कः कस्य कीदृशः क्वेति देहमप्य विशेषयन् ।
सहजानन्द सम्पन्नः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—कः कस्य कीदृशः क इति देहं अपि अविशेषयन् अहं सहजानन्द सम्पन्न सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ कौन ? किसका ? कैसा ? कहाँ ? इस प्रकार देह तकमें भी विशेषण न करता हुआ मैं स्वाभाविक आनन्दसे युक्त होता हुआ अपनेमें अपने अर्थ स्वयम् सुखी होऊं ॥

इति श्री मद्ध्यात्मयोगिना शान्तमूर्त्तिना न्यायतीर्थेण सिद्धांत-न्यायसाहित्यशास्त्रिणा पूज्यश्री १०५ क्षुल्लकमनोहरवर्णिना सहजानन्द स्वामिना विरचितायां सहजानन्दगीतायामन्तर्ज्ञान प्ररूपकोद्वितीयोऽध्यायः समाप्तः।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ओन्नमः सिद्धेभ्यः

तृतीयोऽध्यायः

प्रारभ्यते

(१)

नश्वरे चेन्द्रियाधीने सुखे सारो न विद्यते ।
का रतिस्तत्र विज्ञस्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय– नश्वरे च इन्द्रियाधीने सुखे सारः न विद्यते विज्ञस्य मम तत्र का रतिः अहं हि स्वयं स्वस्मै स्वे सुखी स्याम् ॥

अर्थ—क्षणभंगुर और इन्द्रियाधीन सुखाभासमें सार कुछ भी नहीं है फिर भी ज्ञानशील मेरे को उसमें क्या रति हो मैं तो स्वयम् स्वयम्के अर्थ स्वयंमें सुखी होऊं ॥

(२)

यतोऽन्ते क्लेशदाः सर्वे सम्बन्धा, विपदास्पदाः ।
ततः संगं परित्यज्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–यतः सर्वे सम्बन्धाः विपदास्पदाः अन्ते क्लेशदाः सन्ति ततः संगंपरित्यज्य स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–जिस कारण कि सर्व ही सम्बन्ध विपत्तिके स्थान हैं और अन्तमें क्लेशके देने वाले हैं इसलिये परिग्रहके संगको छोड़कर मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयम् सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(३)

यौवनं जरया व्याप्तं शरीरं व्याधिमन्दिरम् ।
समृत्यु जन्म कः सारः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–यौवनं जरया व्याप्तम् अस्ति शरीरं व्याधि मन्दिरम् अस्ति जन्म समृत्यु विद्यते तेषु कः सारः? स्वयं सारे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–यौवनावस्था बुढ़ापे पर व्याप्त है अर्थात जवानीके बाद बुढ़ापा ही आता है शरीर रोगों का घर है जन्म मरण कर सहित है उनमें अर्थात जवानी, शरीर व जन्ममें सार क्या है? मैं तो स्वयं सार रूप अपनेमें अपने अर्थ स्वयं सुखी होऊं ॥

(४)

येषां योगो वियोगोहि नियमेनभविष्यति ।
तेभ्यो नु किं मुधाऽखिदम् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-येषां योगः भवति हि नियमेन तेषां वियोगो भविष्यति नु अहं तेभ्यः वृथा किं अखिन्दन् स्वे स्वस्मै स्वयम् सुखी स्याम् ॥

अर्थ–जिनपदार्थोंका संयोग होता है नियमसे निश्चयसे उनका वियोग होवेगा फिर मैंने उन पदार्थोंके लिये व्यर्थ क्यों खेद किया मैं तोअपने में अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(५)

फेनपुञ्जेऽपि सारः स्यान्न तथापि शरीर के ।
विरज्य देहतस्तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—फेनपुञ्जे अपि सारः स्यात् तथापि शरीरके सारः न अस्ति तस्मात् देहतः विरज्य स्वे स्वस्मै स्वय सुखी स्याम् ॥

अर्थ—फेनके समूहमें चाहे सार निकल भी आवे परन्तु शरीरमें सार नहीं हो सकता इसलिये शरीरसे विरक्त होकर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(६)

विषं पीत्वाऽपि जीवेच्चेन्न भुक्त्वा विषयं सुखी ।
विरज्य भोगतस्तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—यदि विषं पीत्वा अपि कश्चित जीवेत् चेत् जीवेत् परन्तु विषयं भुक्त्वा कश्चित अपि सुखी न भवितुं अर्हति तस्मात् भोगतः विरज्य स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—यदि विषको पीकर भी कोई जीवे तो जीवे परन्तु विषयको भोगकर कोईभी जीव सुखी नहीं हो सकता इसलिये भोग से दूर रहकर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप स्वयम् सुखी होऊं ॥

(७)

देही कश्चिन्न यो मृत्युं न प्राप्तस्तर्हि को मम ।
त्राता स्ववृत्तिरेवातः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—एवं कश्चित् अपि देही न अभूत् यः मृत्युं न प्राप्तः तर्हि मम कः रक्षकः हि स्ववृत्तिः एव ममत्राता अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—ऐसा कोई भी देही नहीं हुआ जो मृत्युको प्राप्त नहीं हुआ तबफिर मेरा ही कौन रक्षक हो सकता ? निश्चयसे आत्मामें स्थितिही मेरा रक्षक है इसलिये मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयम् सुखी होऊं ॥

(८)

बालवृद्ध युवाग्रासे यमस्य समता भवेत् ।
साम्य पुञ्जस्य मे किं न स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—बालवृद्धयुवाग्रासे यमस्य समता भवेत् च साम्य पुञ्जस्य मे किं समता न भवेत् ? अहं नु साम्य स्वरूपे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—बालक हो युवा हो वृद्ध हो सभी के ग्रास (मरण) में यमराज (आयुक्षय) के हो समता हो जावे और समताके पुञ्ज मुझ आत्मामें क्या समता न हो मैं तो समतामय स्वभावी अपनेमें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(९)

रागद्वेषौ हि संसारः संसारो दुःखपूर्णमः ।
संसारतो विज्यातः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—हि रागद्वेषौ संसारः सः संसारः दुःखपूर्णिमः अस्ति अतः संसारतः विरज्य स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—निश्चयसे राग और द्वेष संसार है और वह संसार दुःखसे व्याप्त है इसलिये संसारसे अनुराग न करके मैंअपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(१०)

संसारजो हि पर्यायः संसार उपचारतः ।
त्यक्त्वा तन्मूल संसारं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—हि संसारजः पर्यायः उपचारतः संसारः उच्यते अहं नु तन्मूल-संसारं त्यक्त्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—निश्चयसे संसार (रागद्वेष मोह आदि विभाव) से होने वाली व्यक्तपर्याय तो उपचारसे संसार कहा जाता है मैं तो उसके मूलभूत संसारको ही उपयोगसे हटाकर अपनेमें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

(११)

यन्न रागवशः प्रापम् योनिदेश कुलं न तत् ।
मुक्त्वा रागमतः स्वस्थः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—तत् योनि देश कुलं न अस्ति यत् रागवशः सन् अहं न प्रापम् अतः रागं मुक्त्वा स्वस्थः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—वह (ऐसा कोई) योनिदेश व कुल नहीं है जिसे रागके वशीभूत हुए मैंने न प्राप्त किया हो इसलिये रागको छोड़कर स्वमें स्थित होता मैं अपने आप अपनेमें अपनेलिये सुखी होऊं ॥

(१२)

कीटो भूपोनृपः कीटो जायते विषमेभवे ।
स्वास्थ्यमेव स्थिरं स्थानं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।

अन्वय—अस्मिन् विषमे भवे कीटः भूपः जायते च नृपः कीटः जायते अत्र न किंचित् स्थिरं स्थानं अस्ति किंतु स्वास्थ्यं एव स्थिरं स्थानं अस्ति अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ—इस विषमभवमें कीड़ा तो राजा हो जाता है और राजा कीड़ा हो जाता है इस संसारमें कोई स्थान स्थिर नहीं है किंतु स्व आत्मामें स्थित रहने रूप स्थान ही स्थिर है इसलिये मैं स्वमें ही स्वके अर्थ स्वमें स्थिर होऊं ॥

http://sahjanandvarnishastra.org/

(१३)

प्राप्ता ये दुर्गतेः क्लेशाः भ्रांत्या भ्रांत्वा मयैवते ।
मुक्त्वा भ्रांतिमतः कालात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—दुर्गतेः ये क्लेशः प्राप्ताः ते भ्रान्त्या भ्रान्त्वा मया एव प्राप्ताः अतः कालात् भ्रान्तिं मुक्त्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—दुर्गतिके जो जो क्लेश प्राप्त किये हैं वे भ्रमसे परि-भ्रमण करके मैंने ही तो प्राप्त किये हैं अब इस समय से भ्रांति को छोड़कर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(१४)

आपत्पूर्णभवे ह्येको भ्राम्यामि त्वतोनिजे ।
उपयोगे ततः स्वस्थ स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय-आपत्पूर्णे भवे अहं एकः भ्राम्यामि च तत्त्वतः निजे उपयोगे भ्राम्यामि ततः स्वस्थः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—आपत्तियोंसे भरे हुए संसारमें मैं एक याने अकेला भ्रमण करता हूं और वास्तवमें अपने उपयोगमें भ्रमण करता हूं इसलिए स्व अर्थात निरपेक्ष उपयोगमें स्थित होता हुआ मैं अपनेमें अपने लिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(१५)

देहान्तरं व्रजाम्येको देहमेकस्त्यजाम्यहम् ।
परदृष्टिं हि तत्स्वस्थः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-अहं एक एव देहांतरं व्रजामि च एक एव देहं त्यजामि अथवा परदृष्टिं त्यजामि तत् स्वस्थः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मैं एक याने अकेला ही तो शरीरान्तरको जाता हूं और अकेला ही शरीरको छोड़ता हूं अथवा परदृष्टि को छोड़ता हूं इसलिये परदृष्टिको छोड़कर स्वस्थ होता हुआ अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(१६)

वियोग योग दुःखादौ किञ्चिन्मित्रं न तत्त्वतः ।
स्वाविष्टः स्वस्यः मित्रंस्वः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—वियोग योग दुःखादौ कश्चित् अपि मे मित्रं न वर्तते तु तत्त्वतः स्वाविष्टः स्वः स्वस्य मित्रं अस्ति अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ—वियोग-संयोग दुःख आदिमें कोई भी मेरा मित्र नहीं है परन्तु वास्तवमें निज आत्मामें लीन हुआ मैं ही स्व स्वका मित्र हूं इसलिये स्वके अर्थ सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(१७)

यदन्येषां कृते चेष्टे एको भुञ्जे हि तत्फलम्।
स्वस्मै तत्रापि चेष्टासीत् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—यत् अन्येषां कृते अहं चेष्टे हि तत्फलं अहं एकः भुञ्जे यतः तत्र अपि चेष्टा स्वस्मै आसीत् ततः अन्य विकल्पं विहाय स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—अन्य प्राणियोंके लिये मैं जो चेष्टा करता हूँ निश्चय से उसका फल मैं ही भोगता हूं क्योंकि वहाँ भी चेष्टा मेरे लिये ही थी इसलिये अन्यके विकल्पको छोड़कर मैं अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(१८)

कारणं सर्व दुःखानां स्वज्ञानाभाव एवहि।
येनैको वञ्चितस्तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—सर्व दुःखानां कारणं हि स्वज्ञानाभाव एव अस्ति येन एकः अपि अहं वञ्चितः तस्मात् स्वं विज्ञाय स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—समस्त दुःखोंका मूल कारण निश्चयसे अपने आत्म ज्ञान का अभाव ही है जिससे एक अद्वैत होता हुआ भी मैं ठगाया गया इस कारण अब मैं अपने को जान कर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(१९)

असंकृतेर्हि वस्तूनां स्वस्य स्वेनैव बद्धता।
स्वेक्षणे बद्धता नातः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—वस्तूनां असंकृतेः हि स्वस्य स्वेन एव बद्धता अस्ति तु स्वेक्षणे बद्धता नास्ति अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—पदार्थोंकी असंकरता होनेसे निश्चयसे स्वका स्वसे ही बन्धन है परन्तु निज आत्माके दर्शनमें बन्धन नहीं है इसलिये मैं अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(२०)

बन्धैकत्वेऽपि देहादेर्भिन्न एव स्वभावतः।
परभिन्नात्मवृत्तिः शं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—बन्धैकत्वे अपि स्वभावतः देहादेः भिन्न एव अहं अस्मि च पर भिन्नात्मवृत्तिः शं वर्तते ततः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—बन्धअवस्थासे एकत्व होनेपर भीस्वभावसे देह आदि पर पदार्थसे भिन्नही मैं हूँ और पर पदार्थसे भिन्न निज आत्मामें वर्तन होना सुख है इसलिये मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(२१)

देहादेव यदाभिन्नः कथं वन्धुभिरेकता ।
विभक्तस्य सदा सौख्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–यदा अहं देहादेः एव भिन्नः अस्मि तर्हि वन्धुभिः एकता कथं स्यात् विभक्तस्य स्वस्य द्रष्टुः सदा सौख्य भवति तस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–जब मैं देह आदिसे भी भिन्न हूँ तब बन्धुजनोंसे मेरी एकता कैसे होसकती है? अर्थात् किसीभी परवस्तुसे मेरा एकपन नहीं हो सकता सर्वसे भिन्न स्वके द्रष्टा के सदा निराकुलसौख्य होता है इस कारण मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(२२)

देहोऽणुव्रजजः स्वात्माऽतीन्द्रियो ज्ञान विग्रहः ।
स्वात्मन्येव स्थिरस्तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय–देहः अणुव्रजजः अस्ति स्वात्मा अतीन्द्रियः ज्ञानविग्रहः अस्ति तस्मात् स्वात्मनि एव स्थिरः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–शरीर परमाणुओंके समूहसे जायमान है निज आत्मा अतीन्द्रिय तथा ज्ञान ही जिसका शरीर है ऐसा है इसलिये निज आत्मामें ही स्थिर होता हुआ मैं अपनेमें अपने द्वारा अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(२३)

यैरर्थैर्मम सम्बन्धस्ते स्वरूपात्पृथक् सदा ।
तत्स्व दृष्ट्याऽसुखं तेन स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—यैः अर्थैः मम सम्बन्धः अस्ति ते स्वरूपात् सदा पृथक् सन्ति तत्स्वदृष्ट्या असुखं भवति तेन स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ–जिन जिन अर्थोंके साथ मेरा सम्बन्ध है वे सब स्वके स्वरूपसे सदा भिन्न हैं उनमें आत्माकी दृष्टिसे दुःख होता है इसलिये मैं अपनेमें अपने द्वारा अपने आप सुखी होऊं ॥

(२४)

पलास्थिरुधिरेदेहे स्वबुद्धया क्लेशभाग्भवेत् ।
तत्र रागेनको लाभः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—पलास्थिरुधिरे देहे स्वबुद्धया पापी क्लेशभाग् भवेत् तत्र रागेकः अपि लाभः न अस्ति । अहं तु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–मांस, हड्डी, रुधिर (खून) आदि हैं जिसमें ऐसे इस देहमें स्व आत्माकी बुद्धि करनेसे प्राणी क्लेशका पात्र होता है उस देहमें राग करनेसे कोई लाभ नहीं है तो अपने द्वारा अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(२५)

देहो न शुध्यते सिंधोर्वारिभिः शुध्यतेत्वयम् ।
स्वात्मा स्वात्मधियातस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय–देहः सिंधोः वारिभिः न शुध्यतेतु अयं स्वात्मा स्वात्म धिया शुध्यते तस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ—शरीर समुद्रके समस्त जलसे भी शुद्ध नहीं हो सकता परन्तु यह निज आत्मा निज आत्मामें बुद्धिके द्वारा शुद्ध हो जाता है इसलिये मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(२६)

दुःखाश्रयो हि देहोऽयं देहतो व्यसनानि वै ।
विरज्यते देहतस्तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–हि अयं देहः दुःखाश्रयः अस्ति च देहतः वै व्यसनानि भवन्ति तस्मात् देहतः विरज्य स्वे स्वयं स्वस्मै सुखी स्याम् ॥

अर्थ—नियमसे यह देह दुःखका आश्रय है और देहसे निश्चयतः आपत्तियाँ होती हैं इसलिये देहसे विरक्त होकर अपनेमें अपनेलिए अपने आप सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(२७)

निंद्ये देहेऽप्युषित्वात्म सिद्धिः शक्यावसन्नपि ।
विरज्य देहतस्तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—निन्द्ये देहे अपि उषित्वा आत्म सिद्धिः शक्या अस्ति तस्मात् देहे वसन्नपि देहतः विरज्य स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—इस निंद्य देहमें भी बसकर आत्माकी सिद्धि हो सकने योग्य है इसलिये शरीरमें रहता हुआ भी शरीर से विरक्त होकर मैं अपनेमें अपने आप अपनेलिये सुखी होऊं ॥

(२८)

मनोवाक्कायिकी चेष्टेच्छातो दुःखं ततस्ततः ।
हत्वेच्छां प्रज्ञयाभित्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—इच्छातः मनो वाक्कायिकी चेष्टा जायते ततः दुःखं प्रभवति ततः प्रज्ञयाभित्वा इच्छां हत्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–इच्छासे मन वचन काय सम्बन्धिनी चेष्टा होती है और उस चेष्टासे दुःख होता इसलिए भेदविज्ञानके द्वारा चेष्टा से व इच्छासे अपनेको पृथक करके-इच्छा को नष्ट करके मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(२९)

शुभ कषायमान्द्येनाऽशुभस्तीव्र कषायतः ।
अकषायेनशं नित्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—कषायमान्द्येन शुभः तीव्रकषायातः अशुभ भवति च अकाषयेन स्वीयं शं विलसति ततः अकषायः भूत्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—कषायकी मन्दतासे शुभ प्रवर्तन अथवा शुभबन्ध होता है और तीव्र कषायसे अशुभ प्रवर्तन अथवा अशुभबन्ध होता है और अकषाय भावसे आत्माके निज सहज सुख विलासको प्राप्त होता है इसलिये कषाय रहित होकर मैंअपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(३०)

मनोवाक्कायवृत्तीनां निवृत्तेरुपदेशनम् ।
स्वस्थित्यै स्वस्थितौशांतिः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—मनोवाक्कायवृत्तिनां निवृत्तेः उपदेशनम् स्वस्थित्यै अस्ति च स्वस्थितौ शांतिः वर्तते तस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मन वचन कायकी प्रवृत्तियोंकी निवृत्तिका उपदेश स्व आत्मामें स्थितिके लक्ष्यके लिये होता है और स्वात्मामें स्थिति होनेमें ही शांति है इसलिये मैं अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(३१)

मनोवाक्कायवृत्तिश्चेच्छुभैवास्तूपदेशनम् ।
स्वस्थित्यै स्वस्थितौ शांतिस्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—मनोवाक्कायवृत्तिः भवेत् चेत् शुभा एव अस्तु उपदेशनम् स्वस्थित्यै अस्तु हि शांतिः स्वस्थितौ अस्ति तस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मन वचन कायकी प्रवृत्ति होती हो तो शुभ ही होओ तथैव उपदेश स्वकी स्थितिके लक्ष्यसे होओ निश्चय से शांति स्वकी स्थितिमें ही है इसलिये मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(३२)

शुद्धोपयोगलक्ष्येनात्मा स्वयम् रक्ष्यते तदा ।
स्वस्मिन् स्वमेव वेत्त्यस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—शुद्धोपयोग लक्ष्ये न आत्मा स्वयं रक्ष्यते च सदा स आत्मा स्वस्मिन् स्वं एव वेत्ति अस्मात् शुद्धोपयोग स्वमाने स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—शुद्ध उपयोगके लक्ष्यसे आत्म स्वयम् रक्षित हो जाता है और उस समय वह आत्मा अपनेमें अपने को जानता रहता है अतः शुद्धउपयोगस्वभावी मैं अपनेमें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(३३)

नश्येते निर्ममत्वेन राग द्वेषौ ततः सुखम् ।
निर्ममत्वं विचिन्त्यातः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–निर्ममत्वेन रागद्वेषौ नश्ये ते यतः सुखंभवति अतः निर्ममत्वं विचिंत्य स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–ममता रहित परिणामसे रागद्वेष नष्ट हो जाते हैं और उस स्थितिसे सुख होता है इसलिये ममता रहित परिणामका विशेष चिंतन करके मैं अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(३४)

मुक्त्वेदं कल्पनाजालं मनोऽद्यैनिश्चलंभवेत् ।
नक्लेशो निर्विकल्पः सन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–इदं कल्पना जालं मुक्त्वा अद्य मनः निश्चलं भवेत् पुनः लेशः क्लेशः न अस्ति अतः निर्विकल्पः सन् अहं स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–इस कल्पना जालको छोड़कर यह मन निश्चल हो जावे फिर लेशक्लेश नहीं है इसलिये निर्विकल्प होता हुआ मैं अपनेमें अपने अर्थ स्वयं सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(३५)

ज्ञानं ज्ञानं न कोपादि तत्तज्ज्ञानं न सुस्फुटम् ।
स्वस्मिन् ज्ञानेस्थिरीभूय स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–ज्ञानं ज्ञानं अस्ति कोपादि न भवति तत तत् अस्ति ज्ञानं ते भवति इति सुस्फुटम् अतः ज्ञाने स्वस्मिन् स्थिरीभूय स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–ज्ञान ज्ञान है क्रोधादिक नहीं होता और क्रोधादिक क्रोधादिक है ज्ञान नहीं होता यह निर्विवाद प्रकट है इसलिये ज्ञानस्वरूप स्वमें स्थिर होकर मैं स्वयं अपनेमें अपनेलिये सुखी होऊं ॥

(३६)

तप इच्छा निरोधोऽतः कर्म निर्जीर्यंतेततः ।
तपस्तप्त्वा च शुद्धः सन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–इच्छा निरोधः तपः अस्ति अतः कर्म निर्जीर्यंते ततः तपः तप्त्वा च शुद्धः सन् स्वे स्वयं स्वस्मै सुखी स्याम् ॥

अर्थ–इच्छाका रोकना अर्जात् दूर करना तप है इससे कर्म निर्जीर्ण होता है उसी कारणसे मैं तपको तपकर अर्थात इच्छाको दूरकर शुद्ध होता हुआ अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(३७)

अग्निना काञ्चनं यद्वत् तप्यमान स्तपोऽग्निना ।
शुद्धीभूय लभे स्वास्थ्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अग्निना काञ्चनं यद्वत् तपोऽग्निना तप्यमानः शुद्धीभूय स्वास्थ्यं लभै च स्वे स्वस्मै स्वय सुखी स्याम् ॥

अर्थ—अग्निके द्वारा सुवर्णकी तरह तपरूपी अग्निकेद्वारा तपता हुआ शुद्ध होकर स्वास्थ्य अर्थात् स्वकी सहज स्थितिको प्राप्त करूं और अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(३८)

विरागपरिणत्या मे जायते कर्मणां क्षयः ।
रागभिन्नमतों विन्दन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—मे विरागपणित्या कर्मणाक्षयः जायते अतः रागभिन्नं स्वं विदन् स्वयं स्वस्मै स्वे सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मेरी विराग परिणतिसे कर्मोंका क्षय अर्थात् पृथक् भवन स्वयम् हो जाता है इसलिये रागादि विभावसे भिन्न अपनेको अनुभव करता हुआ मैं अपने द्वारा अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(३९)

वाह्यं तपोऽपि नाशायाशाया यस्मात्तपस्यपि ॥
आशा नाशाय सेवैस्वं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्॥

अन्वय—यस्मात् वाह्यं तपः अपि आशायाः नाशाय भवति तस्मात् तपसि अपि आशानाशाय स्वं सेवै च स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—जबकि वाह्य तप भी आशाके विनाशके लिये होता है तब तपस्या में भी आशाके अभावके अर्थ निज आत्मा को सेऊँ और अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(४०)

धर्म उद्धारकस्त्राता पावको बान्धवो गुरुः ।
सो हिं रागादिकं मुक्त्वा स्यां स्वे स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—धर्मः आत्मनः उद्धारकः त्राता पावकः बान्धवः च गुरुः अस्ति सः अहं रागादिकं मुक्त्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—धर्म आत्माका उद्धारक है रक्षक है पवित्र करने वाला है बान्धव है और गुरु है सो वह धर्मरूप मैं उद्धारकवाधक रागादिको छोड़कर अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(४१)

धर्मो वेशे न यात्रायां वन्दने न च मन्दिरे ।
धर्मे ज्ञप्तिमये तिष्ठन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–धर्मः वेशे न विद्यते यात्रायां वन्दने च मन्दिरे न विद्यते अहं तु ज्ञप्तिमयेधर्मे तिष्ठन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–धर्म वेशमें नहीं है यात्रामें वन्दनामें और मंदिरमें नहीं है अतः मैं तो ज्ञप्तिमय धर्ममें ठहरता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(४२)

मोहक्षोभौ न यत्र स्तः सधर्मो वीतरागता ।
सा मे परिणतिस्तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—यत्र मोहक्षोभौ न स्तः सधर्मः स वीतरागता अस्ति च सा मे परिणतिः तस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ–जहांपर मोह और क्षोभ नहीं है वह धर्म है वह वीतरागता है और वह वीतरागता मेरी परिणति है इसलिये मैं निजपरिणतिमय अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(४३)

लोके रिक्तं न तत्स्थानमनन्ता जन्ममृत्यवः ।
नाभूवन् यत्र किं रज्यै स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–लोके तत् स्थान् रिक्तं न अस्ति यत्र पर्याय बुद्धेः सतः मम अनन्ताः जन्ममृत्यवः न अभूवन् अलं किं रज्यै अहं नु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–लोकमें ऐसा स्थान कोई खाली नहीं है जहाँ पर्याय बुद्धि होते हुए मेरे अनन्त जन्म मरण न हुए हों । बस अब क्या राग करूं ? मैं तो अपनेमें अपनेलिए अपने आप सुखी होऊं ॥

(४४)

लोकं कृतवान्न कोपीमं हरिष्यत्यपि नो तथा ।
अमरोऽहमजन्माहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–कः अपि इमं लोकं न कृतवान् तथा कः अपि इमं नो हरिष्यति अहं हि अमरः अजन्मा अस्मि तस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–किसीने भी इस लोकको नहीं किया तथा कोई इस लोकको न नष्ट करेगा यहां मैं तो अमर और अजन्मा हूँ इसलिये अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(४५)

लोकै द्रव्याण्यनेकानि वर्तन्ते किंतु वै निजे ।
अहूंतां किं पुनः कुर्यां स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—लोके द्रव्याणि अनेकानि वर्तन्ते किंतु अहं वै निजे अस्मि पुनः किं अहंतां कुर्याम् अहं हि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—लोकमें द्रव्य अनेक हैं किंतु निश्चयसे तो निज हीमें हूँ फिर क्या क्या अहंकार करूं मैं तो अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(२२)

अक्षिपूर्णत्वसज्जातिध्यादिदुर्लभवस्तुनि ।
प्राप्ते लाभो यदि स्वस्थः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अक्षिपूर्णत्व सज्जातिध्यादिदुर्लभवस्तुनि प्राप्ते लाभः तदा मन्येत यदि स्वस्थः स्याम् अतः स्वस्थः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—इन्द्रियोंकी पूर्णता, उत्तमजाति बुद्धि आदि दुर्लभ वस्तु के प्राप्त होनेपर लाभ तब माना जावे जबकि मैं स्वस्थ होऊं इसलिये अब स्वस्थ होता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(४७)

आत्मयाथात्म्यविज्ञानं दुर्लभादपि दुर्लभम् ।
लभै रमै च तत्रैव स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—आत्मयाथत्म्यविज्ञानं दुर्लभात् अपि दुर्लभम् अस्ति अहं हि तत् एव लभै च तत्र एव रमै ए स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—आत्माके यथार्थ स्वरूपका बोध दुर्लभसे भी दुर्लभ है मैं तो उस आत्मज्ञानको प्राप्त करूं और आत्मा में ही रमण करूं और अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(४८)

यस्य ज्ञायक भावस्य स्वस्य वित्तिं विना जगत् ।
ज्ञातं व्यर्थं हितं ज्ञात्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—यस्य ज्ञायकभावस्य स्वस्य वित्ति विनाज्ञातं समस्तं अपि जगत व्यर्थं अस्ति तस्मात् हितं ज्ञात्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—जिस ज्ञायक भाव स्वरूप स्वके ज्ञानके बिना जाना हुआ समस्त जगत भी व्यर्थ है इसलिये हितको जान कर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

इति श्री मदध्यात्मयोगिना शान्तमूर्त्तिना न्यायतीर्थेण सिद्धांत-न्यायसाहित्यशास्त्रिणा पूज्यश्री १०५ क्षुल्लकमनोहरवर्णिना सहजानन्द स्वामिना विरचितायां सहजानन्दगीतायाम्भावनाप्ररूपकस्तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ओंनमः सिद्धेभ्यः

चतुर्थोऽध्यायः प्रारभ्यते

(१)

ज्ञानं सुखं न चान्यत्र ज्ञोहं ज्ञानमहं सुखम् ।
सर्वाशामहितांत्यक्त्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—ज्ञानं च सुखं अन्यत्र न विद्यते ज्ञः अहं एव ज्ञानं अहं एव सुखं अस्मि अतः अहितां सर्वाशां त्यक्त्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—ज्ञान और सुख अन्य स्थानमें नहीं है ज्ञ (जाननेवाला) मैं ही ज्ञान हूं मैं ही सुख हूं इसलिये आत्माके अहित स्वरूप समस्त आशाको त्याग करके मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(२)

ज्ञायकोऽजोऽमरोऽहंको जीविताशां करोमि किम् ।
स्वातन्त्र्यं तत्परित्यागे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अहं ज्ञायकः अजः अमरः अस्मि को किं जीविताशां करोमि हि तत्परित्यागे स्वातन्त्र्यं अस्ति अतः जीविताशां त्यक्त्वा स्वयं स्वे स्वस्मै सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मैं ज्ञातास्वरूप अजन्मा और अमर हूं इस असार पृथ्वी पर क्या जीनेकी आशा करूं । निश्चयसे उस जीविताशाके त्याग होनेपर ही स्वतन्त्रता है इसलिये जीविताशाको त्यागकर मैं स्वयम् अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(११)

अदृश्योऽज्ञायकोऽहंकां कीर्तिमिच्छानि काविह ।
स्वातंत्र्यंतत्परित्यागे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अहं अदृश्यः ज्ञायकः अस्मि इह को कां कीर्तिं इच्छानि हि तत्परित्यागे स्वातंत्र्यं अतः कीर्त्याशां त्यक्त्वा अहं स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मैं अदृश्य और ज्ञायकस्वरूप हूं इस असार पृथ्वी पर मैं क्या कीर्ति चाहूं निश्चयसे कीर्तिको आशाके त्याग होनेपर ही स्वतन्त्रता है इसलिये कीर्तिको आशाको त्यागकर मैं स्वयम् अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(१२)

ज्ञायकस्याप्यबद्धस्य विषयाशैव बन्धनम् ।
स्वतन्त्र्यं तत्परित्यागे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—ज्ञायकस्य अपि अबद्धस्य मम विषयाशा एव बन्धनम् अस्ति हि तत्परित्यागे स्वातन्त्र्यं अस्ति अतः विषयाशां त्यक्त्वा स्वयं स्वे स्वस्मै सुखी स्याम् ॥

अर्थ—ज्ञायक होनेपर बन्धन रहित मुझ आत्माके विषयों की आशा बन्धन है निश्चयसे विषयाशाके त्याग होने पर ही स्वतन्त्रता है इसलिये विषयाशाको त्यागकर मैं स्वयं अपनेमें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(५)

आशा त्यागोहि मे बन्धुर्मित्रं त्राता गुरुः पिता ।
तस्यैव शरणं सत्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय–हि आशा त्याग:मे बन्धु: आशाः त्याग:मे मित्रं त्रातागुरु: पिता अस्ति तस्य एव शरणं सत्यं अस्ति अत: आशां विमुच्य स्वयं स्वे स्वस्मै सुखी स्याम् ॥

अर्थ–निश्चयसे आशाका त्याग ही मेरा बन्धु है, आशा त्याग ही मेरा मित्र है, रक्षक है, गुरु, पिता है, उस हीका शरण सच्चा है इसलिये आशाको छोड़कर मैं स्वयं अपनेमें अपने अर्थ सुखी होऊं ॥

(६)

नैराश्येऽपिहि नैराश्यं तस्य का तुलनाभुवि ।
अतो नैराश्यमालम्ब्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय–हि यस्य नैराश्ये अपि नैराश्यं अस्ति तस्यभुवि का तुलना विद्यते अत: नैराश्यं आलम्ब्य स्वयं स्वे स्वस्मै सुखी स्याम् ॥

अर्थ–निश्चयसे जिस आत्माके नैराश्य अर्थात आशाके अभाव या मोक्षमें भी नैराश्य (आशाका अभाव) है उस आत्मा की लोकमें क्या तुलना हो सकती है इस लिये नैराश्य का अवलम्बन करके मैं स्वयं ही अपनेमें अपने अर्थ सुखी होऊं ॥

(७)

वीत तृष्णस्य केऽप्यर्था: क्लेशदा: सुखदा नहि ।
ततोऽर्था: स्यु र्नवास्ताश: स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—वीततृष्णस्य के अपि अर्था:हि न क्लेशदा: न सुखदा: सन्ति तत: अर्था: स्यु: वा न स्यु: अहं अस्ताश: सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—नष्ट हो गई है तृष्णा जिसके ऐसे आत्माको कोई भी पदार्थ न तो क्लेश देने वाले हैं और न सुख देने वाले हैं इसलिये पदार्थ हों या न हों मैं आशा रहित होता हुआ अपनेमें अपने अर्थ स्वयं सुखी होऊं ॥

(८)

सतृष्णस्य सदाकुल्य मर्था: सन्तु न सन्तुवा ।
धीसारं न भवेदिच्छा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—सतृष्णस्य सदा आकुल्यं भवति अर्था: सन्तु वा न सन्तु हि धीसारं एतत् अस्ति यत् इच्छा न भवेत् यत: स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–तृष्णालु आत्माके सदा आकुलता रहती है अर्थ हो चाहे न हो निश्चयसे बुद्धिका सार यह ही है जो इच्छा न होवे जिससे मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(९)

पूर्णंकस्यापि कृत्यंकिं चिकीर्ष्येऽद्वन्द्वताकदा ।
न चेत्त्यक्त्वाहि सर्वाशां स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—किं कस्य अपि कृत्यं पूर्णं जातम् च चिकीर्ष्ये कदा अद्वन्द्वता भूता न चेत् हि सर्वाशां त्यक्त्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–क्या किसी भी प्राणीका काम पूर्ण हो पाया और क्या जिसकी इच्छा है ऐसे कार्यके पड़े रहते हुए कभी निर्द्वन्द्वता हुई ? नहीं हुई तो फिर नियमसे सर्व आशा को त्यागकर अपनेमें अपने अर्थ सुखी होऊं ॥

(१०)

प्रवृत्तावेव नानात्वं निवृत्तावेकरूपता ।
शान्तिमार्गे निवृत्तिर्हि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—प्रवृत्तौ एव नानात्वं अस्ति तु निवृत्तौ एक रूपता विद्यते हि शान्ति मार्गे निवृत्तिः अस्ति अतः स्वभावतः शांते स्वे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–प्रवृत्तिमें नान रूपता है परन्तु निवृत्तिमें एकपना ही है निश्चयसे शांतिमार्गमें स्वयं निवृत्ति है इसलिये स्वभावसे शान्त अपनेमें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(११)

लोभादघ स्ततः क्लेशोऽतस्तृष्णालु सदाकुलः ।
वीततृष्णः स्वभावो मे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–लोभात्अघःप्रभवति ततः क्लेशः जायते अतः तृष्णालुः सदा आकुलः वर्तते किंतु मे स्वभावः वीत तृष्णः अतः वीततृष्णे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—लोभसे पाप उत्पन्न होता है उससे क्लेश होता है इस लिये तृष्णावान सदा आकुलित रहता है किंतु मेरा तो स्वभाव तृष्णा रहित है इसलिये वीततृष्ण अपनेमें अपने अर्थ स्वयं सुखी होऊं ॥

(२०)

तृष्णाबन्धश्च संसारोऽतार्ष्ण्यं मुक्तिः स्वतन्त्रता ।
वीततृष्णः स्वभावो मे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–तृष्णा बंधः संसारः अस्ति च आतार्ष्ण्यं च मुक्तिः स्वतन्त्रता अस्ति सः वीत तृष्ण मे स्वभावः अतः स्वभावमये स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–तृष्णा ही बन्धन और संसार है तृष्णारहितपना ही मुक्ति और स्वतन्त्रता है यह वीततृष्ण होना मेरा स्वभाव ही है इसलिये स्वभावमय अपने आपमें अपने लिये स्वयम् सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(१३)

ताष्ण्येऽताष्ण्येऽपिवस्तूनां वियोगो नार्थकृत् ततः ।
वीततृष्णः स्वभावोमे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–ताष्ण्ये अपि अताष्ण्ये वस्तूनां वियोगः अर्थकृत न अस्ति च वीततृष्णः मे स्वभावः अतः स्वभावमये स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–तृष्णा होनेपर अथवा तृष्णा न होनेपर दोनों अवस्थाओं में वस्तुओंका वियोग अर्थकारी नहीं है अर्थात व्यर्थ है वह तृष्णा न होने रूप परिणाम मेरा स्वभाव ही है इसलिये स्वभावमय अपने आपमें अपने अर्थ स्वयं सुखी होऊं ॥

(१४)

पूर्यते पुण्यकामार्थैर्न किञ्चन्मे ततोहि तान् ।
त्यक्त्वात्मन्येवतिष्ठेयम् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–मे पुण्य कामार्थैः किंचित् अपि न पूर्यते ततः हि तान् त्यक्त्वा आत्मनि एव तिष्ठेयम् च स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–मेरा पुण्य, काम व धनों से कुछ भी पूरा नहीं पड़ता इसलिये नियमसे मैं उनको त्यागकर आत्मामें ही रहूँ और अपनेमें अपने अर्थ स्वयं सुखी होऊं ॥

(१५)

भूतो भवेषु सम्पन्नो न तुष्टोऽभूदनर्थता ।
मायाविनीं किमाशासे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–अहं भवेषु सम्पन्नः भूतः किंतु तुष्टः न अभूत् अपितु अनर्थता एवअभूत् तर्हि मायाविनी किं आशा से अहं नु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–मैं अनेक भवोंमें लौकिक विभूतियोंसे सम्पन्न हुआ किंतु सन्तुष्ट नहीं हुआ बल्कि अनर्थ ही हुआ । तब मायाविनी विभूतिकी मैं क्या आशा करूं मैं तो अपनेमें अपने अर्थ स्वयम् सुखी होऊं ॥

(१६)

पुण्यापुण्यफलंदृश्यमदृश्याचिच्चमत्कृतिः ।
वीततृष्णस्य स्वस्थस्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय–दृश्यं एतत् सर्वं पुण्यापुण्यफलं अस्ति च वीततृष्णस्य आत्मनः चिच्चमत्कृतिः अदृश्या अस्ति सा स्वस्थस्य प्रतिभाति ततः स्वस्थः सन् एव स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–दिखनेवाला यह सब पुण्य और पापका फल है और तृष्णा रहित आत्माको चैतन्य चमत्कार रूप अलौकिक विभूति अदृश्य है वह निज आत्मामें होने वालेके अनुभव गम्य है इसलिये मैं तो स्वस्थ होता हुआ अपनेमें अपने अर्थ स्वयम् सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(१७)

वर्तते मेद्य किं सम्पज्जन्मार्जितंयशः ।
दूरमास्तां विपन्मूलं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अद्य मे जन्म जन्मार्जितं यशः च सम्पत् किं वर्तते न वर्तते आः विपन्मूलं तत् दूरं आस्तां अहं नु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—आज मेरा जन्म जन्ममें उपार्जित किया हुआ यश और सम्पत्ति क्या है ? नहीं है ओह ! तब विपत्ति का कारण वह सम्पत्ति और यश दूर रहो मैं तो अपनेमें अपने अर्थ स्वयं सुखी होऊं ॥

(१८)

स्वात्मचिंतापि चिंतैव चिंतास्वानन्दबाधिनी ।
सर्वं चिंतां विमुच्यातः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—स्वात्म चिंता अपि चिंता एव वर्तते चिंता स्वानन्द बाधिनी भवति अतः सर्वं चिंतां विमुच्य स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—निज आत्माकी चिंता भी चिंता ही है चिंता आत्मीय सहज आनन्दकी बाधिका होती है इसलिये सर्व चिंता को छोड़कर मैं अपनेमें अपने अर्थ अपने द्वारा सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(१९)

वित्तं विषयदस्युःक्व मित्रं शत्रुःक्व पाटवम् ।
तन्मूलाशा नमे यस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—क्व वित्तं अस्ति क्व विषय दस्युः अस्ति क्व मित्रं क्व शत्रुः अस्ति क्व पाटवम् अस्ति यस्मात् मे तन्मूलाशा एव न अस्ति अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ—कहां तो धन है कहां विषय चोर है कहां मित्र है कहां शत्रु है कहां चतुराई है जबकि मेरे तन्मूलक आशा ही नहीं है तब मैं तो अपनेमें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

(२०)

निर्वाणं भोगवैरस्यं बन्धो भोगेषु गृद्धता ।
स्वायत्तमेव निर्वाणं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—भोग वैरस्यनिर्वाणं अस्ति भोगेषु गृद्धता बंधः अस्ति हितत् निर्वाणं स्वायत्तं एव अस्ति अतः स्वे स्वयं स्वस्मै सुखी स्याम् ॥

अर्थ—भोगोंमें विरक्तता होना निर्वाण है व भोगोंमें गृद्धि होना ही बन्ध है वास्तवमें वह निर्वाण स्वके आधीन है अतः मैं स्वमें ही स्वयं आत्मार्थ सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(२१)

भोग मोक्षैषिणोऽनेके वाञ्छाहीनो हि दुर्लभः ।
स एव सहजानन्दः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—भोग मोक्षैषिण: अनेके सन्ति तु वाञ्छाहीन: दुर्लभ: अस्ति हि स एव सहजानन्द: वर्तते अत: वाञ्छाहीन स्वभावे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ--भोग और मोक्षके चाहने वाले अनेक हैं परन्तु इच्छा रहित पुरुष दुर्लभ है निश्चयसे वह वाञ्छा रहित आत्मा ही स्वाभाविक आनन्दमय है इसलिये मैं तो वाञ्छा हीन स्वभाव मय निज आत्मामें आत्मार्थ स्वयम् सुखी होऊं ॥

(२२)

ज्ञाने रतस्य धर्मार्थ काम मोक्षे जनौ मृतौ ।
हेयादेयेऽपिचिन्ता न स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—ज्ञानेरतस्य आत्मनः धर्मार्थकाममोक्षे जनौ मृतौव अपि चिंता न अस्ति अतः ज्ञानरूपे स्वयं स्वस्मै स्वे सुखी स्याम् ॥

अर्थ–ज्ञानमें लीन हुए आत्माके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, जन्म, मरण आदिमें कहीं भी चिंता नहीं है इसलिये ज्ञान स्वरूप निज आत्मामें आत्मार्थ स्वयम् सुखी होऊं ॥

(२३)

लाभेऽपिभूतिकीर्तीनां तत्त्यागेन बिना न शम् ।
प्रत्याख्यानमये ज्ञाने स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—भूतिकीर्तीनाम् लाभे अपि तत्त्यागेन विनाशं न भवति अतः प्रत्याख्यानमये ज्ञाने स्वे स्वस्मै स्वयम् सुखी स्याम् ॥

अर्थ--सम्पत्ति और कीर्तियोंके लाभ होनेपर भी उनके त्यागके बिना सुख नहीं होता इसलिये प्रत्याख्यानमय ज्ञान स्वभावी निज आत्मामें आत्मार्थ स्वयम् सुखी होऊं ॥

(२४)

मुमुक्षुर्योबुभुक्षुश्चा लम्बतांहि शिवाशिवम् ।
इच्छा हीनः स्वविश्रान्तः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—यः मुमुक्षुः च बुभुक्षुः स्यात् सः शिवाशिवं आलम्बताम् हि इच्छा हीनः स्वविश्रान्तः अस्ति अस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ--जो मोक्षकी इच्छा करने वाला और भोगकी इच्छा करने वाला हो वह शुभ और अशुभका आलम्बन करे परन्तु सर्व इच्छाओंसे रहित पुरुष अपनेमें ही विश्राम पाया हुआ रहा है इसलिये मैं आत्मामें अपनेलिये अपने ही द्वारा सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(२५)

देहादिकं पृथक्कृत्य ज्ञानेतिष्ठानि केवले ।
स्यानिभोगयशोवाञ्छां स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—आत्मनः देहादिकं पृथक्कृत्य केवले ज्ञाने तिष्ठानि भोग यशो वाञ्छां स्यानि च स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—आत्मासे देह आदिक परद्रव्यको पृथक करके केवल ज्ञान में ठहरूं भोगयशकी इच्छाको नष्ट करूं और अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(२६)

इदं ज्ञानं न मे ज्ञानं दर्शनं च न दर्शनम् ।
चिन्तयालं नमेऽन्तर्वाक् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—इदं ज्ञानं मे ज्ञानं न अस्ति च इदं दर्शनं मे दर्शनं न अस्ति मे चिंतया अलं मे अन्तर्वाक् अपि न अस्ति अहं नु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ—यह ज्ञान मेरा स्वाभाविक ज्ञान नहीं है और यह देखना मेरा स्वाभाविक दर्शन नहीं है मेरे तो अन्तर्जल्प भी नहीं है चिंता करना व्यर्थ है मैं तो अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(२७)

यशस्वी वैभवी वा स्यां शांतिस्तत्रापि नो यतः ।
इंधनं तदशांत्यग्नेः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अहं यशस्वी वा वैभवी स्यां तत्र अपि शांति :न। अस्ति यतः तत् अशांत्यग्नेः इन्धनं वर्तते अतः सर्वाशांपरित्यज्य स्वे स्वस्मै स्वय सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मैं यशस्वी अथवा वैभववाला भी हो जाऊं वहाँ शान्ति नहीं है । क्योंकि वह वैभव व यश आदि अशान्ति रूप अग्निका इंधन ही है । इसलिये समस्त आशाको छोड़ कर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(२८)

आतंकारणमाशैव कमाशासेऽत्र कों मम ।
दूरमास्तां न मेऽर्थोहि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—आतंकारणं आशा एव अस्ति कं आशासे अत्र मम क अस्ति हि कश्चित अर्थः मे न अस्ति स दूरं आस्ताम् अहं हि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—दुःखका कारण आशा ही है मैं किसे चाहूँ यहां मेरा कौन है वास्तवमें कोई भी पदार्थ मेरा नहीं है वह सब दूर रहो मैं तो अकेला अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(२९)

वहिर्वर्तिभ्रमो व्यर्थो ज्ञानं तत्त्वमिदं स्फुटम्।
इतोऽन्यन्मे सहायं न स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्॥

अन्वय—बहिः वहिः भ्रमः व्यर्थः इदं स्फुट ज्ञानं एव तत्त्वं समस्ति इतः अन्यं मे सहायं न अस्ति अतः ज्ञानमये स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम्॥

अर्थ—बाहर बाहर भ्रमण करना व्यर्थ है यह प्रकट ज्ञान ही तत्त्व है सार है इसके अतिरिक्त अन्य कुछ मेरा सहाय नहीं है इसलिये ज्ञानमय निज आत्मामें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं॥

(३०)

मूढोऽन्यममृतं मत्वा भ्रमेन्मे त्विह निश्चयः।
ह्येकत्वममृतं तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्॥

अन्वय—मूढ़ः अन्यं अमृतं मत्वा भ्रमेत् तु इह मे निश्चयः हि एकत्वं अमृतं अस्ति तस्मात् एकत्वमये स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम्॥

अर्थ—मोही आत्मा अन्य किसी वस्तुको अमृत समझ करके भ्रमण करे तो करो परन्तु यहाँ तो मेरे यह ही निश्चय है कि आत्माका एकत्व ही अमृत है इस लिये एकत्व स्वरूप निज आत्मामें आत्मार्थ अपनेद्वारा सुखी होऊं॥

(३१)

रागद्वेषपरित्यागे कर्म मे किं करिष्यति।
त्यागोहि केवलं ज्ञानं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्॥

अन्वय—रागद्वेष परित्यागे सति कर्म मे किं करिष्यति हि त्यागः केवलं ज्ञानं अस्ति अतः ज्ञानमये स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम्॥

अर्थ—राग और द्वेषके त्याग होनेपर कर्म मेरा क्या करेगा वास्तव में उनका त्याग केवल ज्ञानमात्र रहना ही है अतः ज्ञानमय निज आत्मामें आत्मार्थ स्वयम् सुखी होऊं॥

(३२)

रागो योगेऽपि हेयश्चेदसम्बन्धे पुनर्नकिम्।
अयोगे रागता चेद्धा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्॥

अन्वय—यदा योगे अपि रागः हेयः अस्ति चेत् पुनः असम्बन्धे किं रागः हेयः न अस्ति। अयोगे रागता चेत् हा कष्टम्, अहंतु सर्वं विभक्ते स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम्॥

अर्थ—जब पदार्थके सम्बन्ध होनेपर भी राग हेय है तब फिर पदार्थके अभावमें किया गया राग क्या हेय नहीं है? यदि पदार्थके अभाव होनेपर भी रागपरिणति हो तब खेद है कष्टकी बातहै मैं तो सर्वसे जुदा स्वयम् सिद्ध निजआत्मामें आत्मार्थ अपने आप सुखी होऊं॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(३३)

शुद्धात्मानं विहायान्यचिन्ता पापोदयस्ततः ।
अन्यचिंतां पृथक्कृत्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–शुद्धात्मानं विहाय अन्य चिंता पापोदयः अस्ति ततः अन्य चिंतां पृथक् कृत्य अहं स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम्।

अर्थ–शुद्धात्माको छोड़कर अन्य किसी भी पदार्थकी चिंता ही पापका उदय है इसलिये अन्य सर्व चिंतनको छोड़करके अपनेमें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

(३४)

पराशाजीवितोमूढ़ः स्वातन्त्र्यंमन्यतेबुधः ।
शं स्वातन्त्र्यं विनानातः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—मूढ़ः पराशाजीवितः अस्ति बुधः स्वस्य स्वातन्त्र्यं मन्यते हि स्वातन्त्र्यं विनाशं न भवति अतः स्वतन्त्र स्वरूपे स्वे स्वस्मैं स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–मोही (मूर्ख) आत्मा परकी आशामें जीवित रहता है बुद्धिमान स्वकी स्वतन्त्रताको समझता है निश्चय से स्वातन्त्र्यके बिना सुख नहीं होता है अतः स्वतन्त्र स्वरूपी निज आत्मामें मैं निजके अर्थ स्वयम् सुखी होऊं ॥

(३५)

देवभक्तावपिध्यानं भावः स्वस्यैव वर्तते ।
स्वः स्वस्मै शरणं तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय–देवभक्तौ अपि ध्यानं स्वस्य एव भावः वर्तते अतः सिद्धं स्वस्मै स्वः एव शरणं अस्ति तस्मात् स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–परमात्माकी भक्तिमें भी आ गया हुआ ध्यान स्वका ही तो भाव है। इससे सिद्ध है कि स्वके लिये स्व ही शरण है इसलिये मैं स्वमें ही स्वके अर्थ सुखी होऊं ॥

(३६)

किं स्वानुकूलमेऽन्येषां किं स्वस्यान्यानु कूलने ।
शं स्वानुकूलने स्वस्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अन्येषां स्वानुकूले किं भवेत् च स्वस्य अन्यानुकूलने किं भवेत् हि स्वस्य स्वानुकूलेने शं भवति अतः स्वे एव स्वयं स्वस्मै सुखी स्याम् ॥

अर्थ—अन्य जीवोंके अपने अनुकूल करनेमें क्या होता है निश्चयसे अपनेको ही अपने अनुकूल करनेमें सत्य सुख है इसलिये मैं अपनेमें हीअपने द्वारा अपने अर्थ सुखी होऊं ॥

Version 1

(३७)

न हानिः सहजे ज्ञाने किन्त्विदानीं न सादशा ।
अतश्चिन्तानिरोधेन- स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—सहजे ज्ञाने हानिः न अस्ति किंतु इदानीं सा दशा न वर्तते अतः चिंता निरोधेन स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—सहजज्ञानमें कहीं भी हानि नहीं है परन्तु इस समय तो वह दशा नहीं है इसलिये चिंताके निरोध द्वारा मैं अपनेमें अपने अर्थ अपने द्वारा सहज सुखी होऊं ॥

(३८)

सुखं हि सर्वसंन्यासस्तु कुर्वे सर्वसंग्रहम् ।
दुःखोपायेन किं शं स्यात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—हि सर्वसंन्यासः सुखं अस्ति तु सर्व संग्रहं कुर्वे तर्हि दुःखोपायेन किं शं स्यात् अतः सर्व संन्यस्य स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—निश्चयसे सर्वका त्याग ही सुख है परन्तु मैं सर्व संग्रह करता हूँ तब क्या दुःखके उपायसे सुख हो जावेगा ? नहीं इसलिये मैं सर्वका संन्यास करके स्वमें स्वके अर्थ स्वके द्वारा सुखी होऊं ॥

(३९)

परसंगरतोबद्धः स्वस्थो मुक्तोऽग्रहो ग्रहः ।
तस्याग्राह्यस्य ग्राह्यस्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—परसंगरतःबद्धः अस्ति स्वस्थः मुक्तः अस्ति तस्य स्वस्थस्य अग्राह्यस्य अग्रहः ग्राह्यस्य ग्रहः स्वयं अस्ति अतः स्वस्थः सन् ग्रहाग्रह स्वरूपे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—परपदार्थोंके संग्रहमें लीन आत्मावद्ध है और निज आत्मामें स्थित आत्मामुक्त है और स्वस्थ आत्माके अग्राह्यका अग्रहण और ग्राह्यका ग्रहण स्वयमेव है इसलिये मैं भी स्वस्थ होता हुआ ग्रहाग्रह स्वरूप निज आत्मामें निजके अर्थ स्वयम् सुखी होऊं ॥

(४०)

सुखायान्यत्प्रतीक्षैव सुखहत्यामता यतः ।
सुखेनास्मि स्वयं पूर्णः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—सुखाय अन्यत्प्रतीक्षा एव सुखहत्या मतायतः अहं सुखेन स्वयं पूर्णः अस्मि अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—सुखके अर्थ पर-पदार्थकी प्रतीक्षा करना ही सुखकी हत्या है यतः (क्योंकि) मैं सुखसे स्वयं परिपूर्ण हूं अतः मैं अपनेमें ही अपने अर्थ स्वयम् सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(४१)

उत्तमस्त्याग आशा न प्रतीक्षा यत्र वर्तते।
परादृष्टयां न सा स्वास्थ्ये स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्॥

अन्वय—यत्र आशा च प्रतीक्षा न वर्तते स एव उत्तमः त्यागः अस्ति सा परादृष्ट्यां न अस्ति परादृष्टिः स्वास्थ्ये न अस्ति अतः अहं स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम्॥

अर्थ—जहाँपर आशा और प्रतीक्षा नहीं वह ही उत्तम त्याग है वह आशा और प्रतीक्षा पर-पदार्थके अलक्ष्यमें है और वह परकी अदृष्टि स्वमें स्थित रहनेमें है इसलिये मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं॥

(४२)

भोगे योगे न शांतिस्त्विच्छाहीनो वर्तते हि यः।
शांत्याधारः स एवातः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्॥

अन्वय—भोगे च योगे शांतिः न अस्ति तु यः इच्छाः हीनः वर्तते स एव शान्त्याधारः अस्ति अतः इच्छाहीने स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम्॥

अर्थ—भोगमें और योगमें शान्ति नहीं है परन्तु जो आत्मा सर्वेच्छाहीन है वह ही शान्तिका आधार है इसलिये मैं इच्छाहीन निज आत्मामें निजके अर्थ स्वयं सुखी होऊं॥

http://www.jainkosh.org

(४३)

कृपां कर्तुं न शक्योऽन्यो मय्यहमेव तत्क्षमः।
ततोऽन्याशां परित्यज्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्॥

अन्वय—मयि कृपां कर्तुं अन्यः शक्यः न अस्ति अहं एव तत्क्षमः अस्मि ततः अन्याशां परित्यज्य स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम्॥

अर्थ—मुझपर कृपा करनेके लिये अन्य कोई समर्थ नहीं है। मैं ही अपनेपर कृपा करनेमें समर्थ हूं इस लिये अन्यकी आशाको त्यागकर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने द्वारा सुखी होऊं॥

(४४)

सुखं नैराश्यमेवास्ति दुःखमाशैव केवलम्।
स्वदृष्टेः काचिदाशा न स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्॥

अन्वय—सुखं नैराश्यं एव अस्ति च दुःखं केवलं आशा एव अस्ति स्वदृष्टेः काचित् आशा न भवति अतः स्वे स्वदृष्ट्या स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम्॥

अर्थ—सुख आशाका अभाव ही है और दुःखमात्र आशा ही है स्वमें दृष्टि होनेसे कोई आशा नहीं होती अतः स्वमें स्वदृष्टिके द्वारा स्वके अर्थ में स्वयम् सुखी होऊं॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(४५)

इन्द्रोऽप्याशान्वितोदुःखी गताशोऽसंगकः सुखी ।
स्वास्थ्यमेव गताशत्वं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—आशान्वितः इन्द्रः अपि दुःखी अस्ति गताशः असंगकः सुखी अस्ति हि स्वास्थ्यं एव गताशत्वं अस्ति अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—आशा सहित इन्द्र भी दुःखी ही है नष्ट हो गई है आशा जिसकी ऐसा निष्परिग्रही साधु सुखी है वास्तवमें स्वमें ही स्थित रहना ही गताशत्व है इस लिये मैं स्वमें ही रहकरके स्वके अर्थ स्वयम् सुखी होऊं ॥

(४६)

आशा गतास्तदा सिद्धि र्नाभिलष्यं यतस्तदा ।
स्ववृत्तिस्तत्पदं तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—यदा आशा गता तदा सिद्धिः अस्तियतः यदा अभिलष्यं किंचित् न अस्ति हि तत् पदं स्ववृत्तिः अस्ति तस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयम् सुखी स्याम् ॥

अर्थ—जब आशा नष्ट हुई तब सिद्धि ही है क्योंकि उस समय अभिलाषाके योग्य कुछ भी नहीं है वास्तवमें वह पद निज आत्मामें रहना ही है इसलिये निज आत्मामें रहता हुआ मैं अपने अर्थ स्वयं सुखी होऊं ॥

(४७)

यावन्मूर्च्छास्ति कस्मिंश्चित्तावन्निःशल्यता न हि ।
स्ववृत्तौ नास्ति मूर्च्छातः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—यावत् कस्मिँश्चित् मूर्च्छा अस्ति तावत् निःशल्यता न अस्ति हि स्व वृत्तौ मूर्च्छा न अस्ति अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ— जब तक किसी भी पदार्थमें मूर्च्छा है तबतक निःशल्यता नहीं है वास्तवमें मूर्च्छा निज आत्मामें रहनेकी स्थिति में नहीं है इसलिये मैं निज आत्मामें ही निज आत्माके अर्थ निज आत्माके द्वारा सुखी होऊं ॥

(४८)

देहिनां देहभोगानां दुःखं संयोगतस्ततः ।
संयोग कस्य वाञ्छानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—देहिनी देह भोगानां संयोगतः दुःखं भवति ततः कस्य संयोगं वाञ्छानि अहं तु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—प्राणियोंको शरीर और भोगोंके सम्बन्धसे ही दुःख होता है इसलिये मैं किसके संयोगको चाहूँ मैं तो अपनेमें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

इति श्री मद्ध्यात्मयोगिना शान्तमूर्तिना न्यायतीर्थेण सिद्धांत-न्यायसाहित्य शास्त्रिणा पूज्यश्री १०५ क्षुल्लकमनोहरवर्णिना सहजानन्द स्वामिना विरचितायां सहजानन्दगीतायामनैराश्यप्ररूपकस्चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ओं नमः सिद्धेभ्यः

पञ्चमोऽध्यायः प्रारभ्यते

(१)

यदाप्नोति सुखं स्वस्थो न तल्लेशं प्रतिष्ठितः ।
स्वास्थ्ये शं न हि रागेऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—स्वस्थः आत्मा यत् सुखं प्राप्नोति केवलं प्रतिष्ठितः तल्लेशं अपि न प्राप्नोति हि शं स्वास्थ्ये एववर्तते रागे न अस्ति अतः अहं स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—निज आत्मामें उपयोग द्वारा स्थित रहने वाला आत्मा जिस सुखको प्राप्त करता है लोकमें कितनीभी प्रतिष्ठा प्राप्त हुआ स्वास्थ्यभावसे रहित पुरुष उस सुखके लेशमात्रको भी नहीं प्राप्त हो सकता निश्चयसे सुख तो स्वास्थ्य परिणाममें है रागमें नहीं इसलिये मैं अपने ही अपने द्वारा अपने अर्थ सुखी होऊं ॥

(२)

चिन्तेच्छया ततःक्लेशो गताशः सौख्यसागरः
गताश्यं मंगलं स्वास्थ्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—इच्छया चिंता भवति ततः क्लेशः जायते गताशः सौख्य सागरः समस्ति यतः गताश्यं मंगलं स्वास्थ्यं अस्ति अतः गताशे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—इच्छासे चिंता होती है चिंतासे क्लेश होता है परंतु नष्ट होगई है आशा जिसकी ऐसा आत्मा सुखका सागर है क्योंकि गताश्य अवस्थाही मंगल है स्वास्थ्य रूप है इसलिये आशा रहित निज आत्मामें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(३)

आकिञ्चन्यभवंस्वास्थ्यं स्वास्थ्यं सुख स्वरूपकम् ।
न किंचिन्मे न किंचिन्मे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—स्वास्थ्यं सुख स्वरूपकं अस्ति तत् स्वास्थ्यं आकिञ्चन्यभवं अस्ति मे किञ्चित् न मे किञ्चित् न अहं नु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—स्वास्थ्य स्वयं सुखका स्वरूप लिये हुए है और वह स्वास्थ्य आकिञ्चन्य दृष्टिसे प्राप्त होता है मेरा कुछ भी नहीं है मेरा कुछ भी नहीं है मैं तोअपनेमें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

(४)

यदा यत्कर्तु मायात्वायातु चेन्न मया कृतम् ।
ज्ञप्तिमात्र विधौशक्तः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—यदा यत्कर्तु आयातु आयातु चेत् मया न कृतम् । यतः अहं ज्ञप्तिमात्र विधौ शक्तः अस्मि अतः ज्ञप्तिमये स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—जिस समय जो करनेमें आवे आवे तो भी वह स्वयं मेरे द्वारा नहीं किया गया क्योंकि मैं तो ज्ञप्तिमात्र कार्य करनेमें समर्थ हूं इसलिये ज्ञप्तिमय अपनेमें अपने आप ही अपने अर्थ सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(५)

शास्त्राण्यधीत्य स्वास्थ्यं न सर्वं विस्मरणाद्विना ।
तस्माद्विकल्पनास्त्यक्त्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—शास्त्राणि अधीत्य अपि सर्वं विस्मरणात बिना स्वास्थ्यं न भवति तस्मात् विकल्पनाः त्यक्त्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—शास्त्रों को पढ़कर के भी सबके भूले बिना-स्वास्थ्य नहीं होता है इसलिये सर्व विविध कल्पनाओंको छोड़कर मैं अपनेमें अपने अर्थ स्वयं सुखी होऊं ॥

(६)

ज्ञात्वालसः श्रमं व्यर्थं नेत्रोन्मेषनिमेषयोः ।
स्वस्थः सुखी स एवातः स्यां स्वे स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—यः नेत्रोन्मेषनिमेषयोः श्रमं व्यर्थं ज्ञात्वा आलसः भवति तत एव स्वस्थः भवति स एव सुखी भवति अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—जो नेत्र उघाड़ने तथा बन्द करने तकके कार्यमें भी परिश्रम को व्यर्थ जानकर प्रवृत्तिमें आलसी हो जाता है और इस ही अलसतासे स्वस्थ हो जाता है वह ही आत्मा सुखी होता है इसलिये मैं अपनेमें ही रहता हुआ अपने अर्थ सुखी होऊं ॥

(७)

दिशेदीशोऽपिसाक्षाच्चेद् विना स्वास्थ्यान्नमंगलम् ।
सुखदुःखे स्वयंदायी स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—यदि साक्षात् ईशः अपि दिशेत् अत्र अपिस्वास्थ्यात् मंगलं न भवति अयं आत्मा सुख दुःखे स्वयं दायी वर्तते अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—यदि साक्षात परमात्मा भी उपदेश देवे तो भी स्वास्थ्यभावके बिना मंगलं अर्थात कल्याण सुख व नैर्मल्य नहीं होता यह आत्मा अपने सुखदुःख आदि अवस्थाओंके लिये स्वयं जिम्मेदार है इसलिये अपनेमें अपने ही अर्थ अपने द्वारा सुखी होऊं ॥

(८)

विश्वं सुखांशमूलं न शं ज्ञानत्यागयोः फलम् ।
स्वे रमै स्वेचतुष्यानि स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—विश्वं सुखांशमूलं न अस्ति शं ज्ञान त्यागयोः फलम् अस्ति अतः ज्ञान त्यागमये स्वेस्मै स्वे तुष्यानि च स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—यह समस्त विश्व भी सुखके अंशमात्रका भी कारण नहीं है सुख ज्ञान और त्याग का फल है इसलिये ज्ञान और पर द्रव्योंके स्वयं त्यागस्वरूप निज आत्मा में रमण करूँ निज आत्मामें सन्तुष्ट होऊं । और अपनेमें अपने अर्थ अपने द्वारा सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(९)

अद्वैते स्वेऽस्तु दृष्टिर्मा द्वैतेऽद्वैते न सम्भ्रमः ।
विपज्जन्म न मृत्युर्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अद्वैते स्वेदृष्टिः अस्तु द्वैते मा अस्तु यतः अद्वैते सम्भ्रमः न विपत् न जन्म न वा मृत्युः न अतः अद्वैते स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—अद्वैत (एकांकी) निज आत्मापर ही दृष्टि होओ द्वैत पर दृष्टि मत होओ क्योंकि अद्वैतमें न विभ्रम है न विपत्ति है न जन्म है न मृत्यु है इसलिये अद्वैत निज आत्मामें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(१०)

यत्रकुत्राप्यवस्थायामस्मि तत्रैव यत्नतः ।
कृत्वां सत्याग्रहं शान्तः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अहं यत्र कुत्र अपि अवस्थाया अस्मि तत्र एव यत्नतः सत्याग्रहं कृत्वा शान्तः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मैं जिस किसी भी अवस्थामें हूँ उसी अवस्थामें यत्नपूर्वक अपने सत्य स्वरूपका आग्रह करके शान्त होता हुआ अपनेमें अपने अर्थ अपने द्वारा स्वयम् सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(११)

कश्चित् कालश्च देशः स्यात् पूर्तिर्मे तद्गुणैर्न हि ।
शुद्धवृत्तिर्यत स्वास्थ्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—कश्चित् कालः च कश्चित् देशः स्यात् हि तद्गुणैः मे पूर्तिः न भवति यतः शुद्ध वृत्तिः मे स्वास्थ्यं अस्ति अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ—कोई काल हो और कोई देश हो निश्चयसे उन परके गुणोंसे मेरी कोई पूर्ति नहीं होती क्योंकि मेरा स्वास्थ्य तो शुद्ध निज आत्मामें वृत्ति है इसलिये मैं निज आत्मा में ही रहता हुआ अपने अर्थ स्वयं सुखी होऊं ॥

(१२)

मे चैतन्यस्य शास्त्रं क्व चर्चा ज्ञानं क्व कल्पना ।
स्वतो बहिर्न धावानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—चैतन्यस्य मे क्व शास्त्रं क्व चर्चा क्व ज्ञानं क्व कल्पना अस्ति अहं नु स्वतः बहिः न धावानि च स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—चैतन्यमात्र मुझ आत्माके कहां शास्त्र हैं कहां चर्चा कहां ज्ञान है कहां कल्पना है मैं तो अब अपने से बाहर न दौडूं और अपनेमें अपने अर्थ अपने द्वारा सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(१३)

मे चैतन्यस्य भोगः क्व तृप्तिस्तृष्णा क्व बन्धनम् ।
क्वाज्ञानं क्व विपत्तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय–चैतन्यस्य मे भोगः क्व तृप्तिः क्व तृष्णा क्व बन्धनं क्व अज्ञानं क्व विपत् क्व अस्ति तस्मात् अहं स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–चैतन्यमात्र मुझ आत्माके भोग कहां है तृप्ति कहां है तृष्णा कहां है बन्धन कहां है अज्ञान कहां है विपत्ति कहां है इसीलिये अपनेमें अपने अर्थ अपने द्वारा सुखी होऊं ॥

(१४)

दुःखे ज्ञान च्युतिर्नस्यात् कायक्लेशेऽपि स्वस्थितिः ।
उद्देश्यं ज्ञानिनस्तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–दुःखे ज्ञानच्युतिः न स्यात् इति हेतोः विहिते कायक्लेशे अपि स्वस्थितिः ज्ञानिनः उद्देश्यं अस्ति तस्मात्स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–दुःख उपस्थित होनेपर ज्ञानसे मेरे उपयोगकी च्युति न होवे इस हेतुसे किये गये काय क्लेशमें भी स्वमें स्थित रहना ही ज्ञानीका उद्देश्य है इसीलिये मैं अपनेमें अपने ही अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

(१५)

न स्वज्ञप्तिं विना ध्यानं यतः स्वोपासनामयम् ।
शुद्धात्मोपासनंतस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–स्वज्ञप्तिं विना ध्यानं न भवति यतः शुद्धात्मोपासनं स्वोपासना मयं भवति तस्मात् स्वे स्वस्मै स्वं जानन् स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–निज आत्माकी ज्ञप्तिके बिना ध्यान नहीं हो सकता क्योंकि शुद्धात्मा (परमात्मा) की उपासना भी निज आत्मा की उपासनामय है इसलिये मैं अपनेमें ही अपने अर्थ अपनेको जानता हुआ स्वयं सुखी होऊं ॥

(१६)

ज्ञप्तिस्त्वस्त्विह सर्वत्र स्वबुद्धेः स्वस्यदर्शनम् ।
स्वाचरणंततोऽस्त्वस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–इह सर्वत्र ज्ञप्तिः अस्त तु स्वस्मिन् स्वबुद्धेः स्वस्य दर्शनं अस्तु ततः स्वाचरणं अस्तु यस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–यहां सब जगह जानना रहो परन्तु स्वमें स्वकी बुद्धि से स्वका दर्शन होओ और उसी उपायसे स्वका आचरण होओ जिससे मैं अपनेमें ही अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(१७)

सुप्तमत्तदशालोके भ्रमो हि स्वच्युतौ दशाः ।

सर्वाभ्रमास्ततः स्वस्थः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–लोके सुप्त मत्त दशाः भ्रमाः कथ्यन्ते हि स्वच्युतौ सर्वाः दशाः भ्रमाः सन्ति ततः स्वस्थः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–संसारमें सोये हुये व पागल हुए की दशाएं भ्रम रूप कही जाती हैं परन्तु वास्तवमें निज आत्मासे च्युति होनेपर सब ही दशाएं (चाहे चतुराई पूर्ण हों) भ्रम रूप हैं इसलिये मैं तो स्वमें ही स्थित होता हुआ स्वमें स्वके अर्थ सुखी होऊं ॥

(१८)

यततामव्रतीवृत्ते न तुष्येत्तु व्रती व्रते ।

ज्ञानस्थितिर्व्रतार्थोऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–अव्रती वृत्ते यतताम् तु व्रती व्रते एव न तुष्येत् यतः व्रतार्थः ज्ञानस्थितिः अस्ति अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–अव्रती पुरुष व्रत रूप प्रवृत्तिमें प्रयत्न करे परन्तु व्रती व्रत में ही सन्तुष्ट न हो जावे क्योंकि व्रतका पालन न करने का प्रयोजन ज्ञानभावमें स्थित होना है इसलिये अपनेमें अपने अर्थ अपने द्वारा स्वयम् सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(१९)

पुण्यपापे व्रतावृत्तै मोक्षस्तद्द्वयशून्यता ।

ज्ञानमात्र स्ववृत्तिः सा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–व्रताव्रतैः पुण्यपापेभवतः च मोक्षः तद्द्वयशून्यता अस्ति सा ज्ञानमात्र स्ववृत्तिः अस्ति अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–व्रत और अव्रत रूप भावोंसे पुण्य और पाप होते हैं और मोक्ष पुण्य और पाप दोनों भावोंसे शून्य अवस्था है और वह पुण्यपापशून्यता अथवा व्रताव्रत शून्यता ज्ञानमात्र निज आत्मामें वृत्ति है इसलिये मैं अपनेमें अपनेलिये अपने द्वारा अपने आप सुखी होऊं ॥

(२०)

शृण्वतोवदतोऽप्यात्म चर्चां न ज्ञान भावनाम् ।

विनामुक्तिस्ततोऽत्रै व स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–आत्म चर्चां शृण्वतः वदतः अपि ज्ञान भावनां विना मुक्तिः न भवति ततः अत्र एव स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–आत्मचर्चा को सुनते हुये बोलते हुये भी ज्ञान भावना के बिना मुक्ति नहीं होती है इसलिये इस ज्ञानभाव रूप आत्मामें ही अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(१)

मनोवाक्कायवृत्तीनां ग्रहणे संसार एव हि।
रमै ततः पृथग्ज्ञाने स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—हि मनोवाक्कायवृत्तीनां ग्रहणे संसारः एव अस्ति अतः ततः पृथक्ज्ञाने रमै च स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—वास्तवमें मन वचन और कायकी प्रवृत्तियोंके आत्म सात्करणमें संसार है इसलिये उन वृत्तियोंसे पृथग्भूत ज्ञानमें रमण करूं और अपनेमें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

(२)

वदानीच्छानि पृच्छा न्यात्मानं ज्ञानमयं शिवम्।
अत्रैषविहराण्येष स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अहं ज्ञानमयं शिवं आत्मानं वदानि इच्छानि पृच्छानि तत्र एव विहराणि च एषः अहं स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मैं ज्ञानमय शिवस्वरूप आत्माको ही बोलूं, चाहूं, पूछूं व इस ही आत्मामें विहरूं और यह मैं आत्मामें अपनेमें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

(२३)

भिन्ने स्वस्य धियास्वस्मा च्च्युतो वध्नाम्यतःपरा।
च्च्युतः शाम्यानिवुद्धयास्वे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—भिन्ने पदार्थे स्वस्य धिया स्वस्मात् च्युतः सन् वध्नामि अतः परात च्युतः स्वे स्वस्य बुद्धया शाम्यानि च स्वे स्वस्मै स्वय सुखी स्याम्।

अर्थ—भिन्न पदार्थमें आत्माकी बुद्धिसे स्वसे च्युत हुआ मैं बन्धनको प्राप्त होता हू इसलिये पर पदार्थसे च्युत होता हुआ मैं आत्मामें आत्माकी बुद्धिसे शान्त होऊं और आत्मामें आत्माके अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

(२४)

स्वस्थं स्वं पश्यतो मे न रागद्वेषौ कुतोऽसुखम्।
शंका शल्यं कुतस्तस्मात् स्यां स्वे स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—स्वस्थं स्वं पश्यतः मे रागद्वेषौ न स्तः कुतः असुखं स्यात् कुतः शंकाशल्यं स्यात् तस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—स्वमें स्थित हुये आत्माको देखने वाले मुझ आत्माको उस समय राग द्वेष ही उपयुक्त नहीं है फिर कहाँसे दुःख हो कहाँसे शंका हो कहाँसे शल्य हो इस लिये मैं अपने द्वारा अपने आप अपनेमें सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(२५)

भ्रान्त्या क्षुब्धं मनस्तस्माद् व्यग्रता नान्यथा भवेत् ।
स्वं पश्यतो न मे हानिः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–भ्रान्त्या मनः क्षुब्धं भवति तस्मात् व्यग्रताभवति अन्यथा व्यग्रता न भवेत् हि स्वं पश्यतः मे हानिः न अस्ति अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–भ्रमसे मन क्षुब्ध हो जाता है मनके क्षुब्ध होनेसे व्यग्रता होती है अन्यथा अर्थात भ्रमके दूर होनेपर व्यग्रता नहीं होती वास्तवमें स्वको अनुभवने वाले मुझ आत्माके कोई हानि नहीं इसलिये मैं अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(२६)

तत्किं यन्मयि मुञ्चानि यन्न तत्किं नयानि वै ।
जानन्नेवहितिष्ठानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–यत् मयि वर्तते तत् किं मुञ्चानि यत् मयि न वर्तते वै किं नयानि हि अहं जानन् एव तिष्ठानि च स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–जो मुझमें है उसे क्या छोड़ सकूं और जो मुझमें नहीं है निश्चयसे उसे क्या ला सकूं मैं तो जानता हुआ ही रहूं और अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(२७)

जीवाजीव पृथग्ज्ञानान्निवृत्तिर्जायते परात् ।
ततः स्वास्थ्यं ततः शान्तिः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–जीवाजीव पृथग्ज्ञानात् परात् निवृत्तिः जायते ततः स्वास्थ्यं भवति ततः शान्तिः अस्ति अतः स्वे स्थितः सन् स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–जीव और अजीवके भिन्न भिन्न रूपसे ज्ञान होनेसे पर पदार्थसे निवृत्ति होती है और परनिवृत्तिसे स्वमें स्थिति होती है और स्वस्थितिसे शान्ति है इसलिये मैं स्वमें स्थित होता हुआ अपने अर्थ मैं स्वयम् सुखी होऊं ॥

(२८)

स्वस्थस्य सहजानन्दोऽक्षोभतायाः परच्युतेः ।
एकत्र नियतिः स्वास्थ्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—परच्युतेः अक्षोभतायाः स्वस्थस्य सहजानन्दः समस्ति हि एकत्व नियतिः स्वास्थ्यं वर्तते तस्मात् एकत्वमये स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—पर पदार्थसे उपयोगके अलग होनेसे होने वाली क्षोभ रहित अवस्थाके कारण स्वमें स्थित रहने वाले पुरुषके सहज आनन्द विराजमान है वास्तवमें अपने एकत्व स्वरूपमें नियत होना ही स्वास्थ्य है इसलिये एकत्वमय स्वमें स्वके अर्थ स्वयम् सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(२९)

संवित्यभ्यासशिक्षातः स्वान्यभिन्मोक्ष सौख्यवित् ।
स्वस्थितिर्मोक्षसौख्यंहि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—संवित्यभ्यासशिक्षातः स्वान्यभित् आत्मा मोक्षसौख्यवित् भवात हि स्वस्थितिः मोक्ष सौख्यं अस्ति तस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—अनुभव अभ्यास व अध्ययनसे निज और परमें यथार्थ भेद करने वाला आत्मा मोक्षके सुखको जानने वाला होता है निश्चयसे निज आत्माके शुद्ध स्वरूपमें स्थित रहना ही मोक्ष का सुख है इसलिये मैं तो अपनेमें ही अपने द्वारा आत्मार्थ सुखी होऊं ॥

(३०)

स्वालक्ष्योऽन्योपकारी चेत्क्लिष्टः परकृतावपि ।
स्वलक्ष्योऽस्मान्न मुच्येत स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अन्योपकारी स्वालक्ष्यः चेत् परकृतै अपि क्लिष्टः एव भवति अस्मात् स्वलक्ष्यः न मुच्येत यतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—अन्यका उपकार करने वाला भी यदि स्वके लक्ष्यसे रहित होता है तो परोपकारमें भी दुःखी ही होता है इसलिये स्वका लक्ष्य न छूटे जिससे अपनेमें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

(३१)

निर्द्वन्द्वेऽजेऽमरे शान्तेऽद्वैते ज्ञानिनि निर्ममे ।
स्वस्मिन् स्थित्वा स्थिरोभूत्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—निर्द्वन्द्वे अजे अमरे शांते अद्वैतेज्ञानिनि निर्ममे स्वस्मिन् स्थित्वा स्थिरः भूत्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—द्वन्द्व रहित जन्म रहित मरण रहित शान्त अद्वैत ज्ञानमय ममतारहित निज आत्मामें स्थित होकर स्थिर होकर अपनेमें आत्मार्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

(३२)

ज्ञस्वभावे मयिज्ञाते सर्वं ज्ञातं स्वभावतः ।
तत्रस्थितौ सुखं तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—ज्ञस्वभावे मयि ज्ञाते सति स्वभावतः सर्वं ज्ञातं भवति तत्र स्थितौ सुखं अस्ति तस्मात् ज्ञस्वभावे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—ज्ञान स्वभावी मुझ निज आत्माके ज्ञात होनेपर सहज ही सर्वज्ञात हो जाता है उस ज्ञान स्वभावमें स्थिति होनेपर सुख ही है इसलिये ज्ञान स्वभावी निज आत्मा मेंआत्मार्थ स्वयं सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(३३)

कल्पनालोलकल्लोलैस्त्यक्तः शान्तः स्वयम् सुखी ।
तत्राश्नयः परो नास्ति स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—कल्पनालोल कल्लोलैः त्यक्तः शान्त स्वयं सुखी अस्तियतः तत्र परः आश्रयः न अस्ति अहं अपि पराश्रयशून्ये स्वे स्वस्मै स्वयम् सुखी स्याम् ॥

अर्थ—कल्पना रूप चञ्चल तरङ्गोंसे मुक्त हुआ शान्त पुरुष स्वयं सुखी है क्योंकि वहाँ पर-पदार्थ आश्रयभूत नहीं है…मैं भी पराश्रयशून्य स्वयं समर्थ निज आत्मामें आत्मार्थ स्वयम् सुखी होऊं ॥

(३४)

इदं सुखमिदं दुःखमज्ञस्यैव हि कल्पना ।
स्वच्युतौसर्वकः क्लेशः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—इदं सुखं इदं दुःखं अस्ति इय हि अज्ञस्य एवं कल्पना भवति तथा व स्वच्युतौ सर्वकः क्लेशः वर्तते अतः स्वस्थः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—यह सुख है यह दुःख है यह निश्चयसे अज्ञानीके ही कल्पना होती है और स्वमें च्युत होने पर सर्व क्लेश ही क्लेश है अतः स्वमें स्थित होता हुआ अपनेमें अपने लिये स्वयम् सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(३५)

नृत्वं कुलं मतिः सत्त्वं सत्सङ्गो देशना वृतम् ।
स्वास्थित्यर्थायसन्त्यस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—नृत्वं कुलं मतिः सत्त्वं सत्संग देशना व्रतम् एतानि सर्वाणि- स्वस्थि त्यर्थाय सन्ति अस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयं सखी स्याम् ॥

अर्थ—मनुष्यत्व, कुल, बुद्धि, बल, सत्संगति, उपदेश, व्रत, ये सब निज आत्मामें स्थितिके अर्थ हैं इसलिये मैं अपनेमें स्थित होकर आत्मार्थ स्वयम् सुखी होऊं ॥

(३६)

रागिणो जन्मने मृत्युर्वीतरागस्य मुक्तये ।
स्वस्थिते वीतरागत्वं स्यां स्वे स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—रागिणः मृत्युः जन्मने भवति वीतरागस्य मृत्युः मुक्तये भवति अत् वीतरागत्वं स्वस्थितेः भवति अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—रागी प्राणीकी मृत्यु जन्मके लिये होती है वीतराग आत्माकी मृत्यु मुक्तिके लिये होती है वह वीतरागता स्वमें स्वकी स्थितिसे होती है इसलिये मैं स्वमें रहता हुआ ही स्वकेलिये स्वयम् सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(३७)

वर्षाद्यं नूतनं लोके तत्त्वतस्तत्त्वबोधनम् ।
स्ववृत्तिर्यत्र तत्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—लोके वर्षाद्यं दिनं नूतनं कथ्यते तत्त्वतः यदा तत्त्वबोधनं भवति तत् नूतनं दिनं समस्ति तत् तत्त्वबोधनं तत्र भवति यत्र स्ववृत्तिः स्यात् तस्मात् स्वे स्वनव्यप्रकाशं प्राप्य स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—लोकमें वर्षका आदिदिन नूतन कहा जाता है परन्तु वास्तवमें जिस दिन तत्त्वका बोध हो वही नूतन दिन है वह तत्त्वबोध उस स्थितिमें है जिस स्थितिमें निज आत्माकी वृत्ति हो इसलिये मैं निज आत्मामें निजका नूतन प्रकाश पाकर अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(३८)

स्वयम् यत्कर्तुमायाति तत्कृतौ न विपत्क्वचित् ।
अन्यथा क्लेशता तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—यत् स्वयं कर्तुमायाति तत्कृतौ क्वचित् विपत् न अस्ति अन्यथा क्लेशता भवति तस्मात् कर्तृत्वविकल्पं परित्यज्य स्वयं स्वस्मै स्वे सुखी स्याम् ॥

अर्थ—जो स्वयं अर्थात करने की भावना या वासना या बुद्धिके बिना करने में आता है उस कार्यमें कहीं विपत्ति नहीं है, अन्यथा अर्थात करने की वासना व प्रयत्न बुद्धि करने पर दुःख ही है इसलिये कर्तृत्व के विकल्पको त्यागकर स्वयं ही स्वयंके अर्थ स्वयंमें सुखी होऊं ॥

(३९)

संयमेन नरो धीरो गम्भीरः शल्यनिर्गतः ।
संयमः स्वस्थितिस्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-नरः संयमेन धीरः गम्भीरः शल्यनिर्गतः सुखी भवति, संयमः स्वस्थितिः एव अस्ति तस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ--मनुष्य संयमसे धीर, गम्भीर व शल्य रहित होता हुआ सुखी होता है, संयम··· स्वमें स्थिति ही है इसलिये स्वमें स्वके लिये स्वके द्वारा स्वयं सुखी होऊं ॥

(४०)

यावद्दूरं कषायेभ्यस्तावान् धीरः सुखी बुधः ।
अकषायः स्ववृत्यातः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–यः बुधः कषायेभ्यः यावत् दूरं स्यात् सः तावान् धीरः च सुखी भवति सः अकषायः भावः स्ववृत्त्या भवति अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ— जो बुद्धिमान कषायोंसे जितना दूर हो वह उतना ही धीर और सुखी होता है वह अकषाय भाव स्वमें रहनेसे होता है इसलिये मैं अपनेमें ही रहकर अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(४१)

रागद्वेषोदयस्तस्मिन्नवाहं का कृपा कृता ।
स्ववृत्तिः स्वदया तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–रागद्वेषोदयो भूत. अहं तस्मिन् अवहम् ~ मयामयि का कृपा कृता, स्वदया स्ववृत्तिः एव अस्ति तस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ--राग द्वेषका उदय हुआ मैं उसमें बह गया मैंने मुझ पर (अपनेपर) क्या कृपा की, अपनी दया अपनेआप में रहना है इसलिये मैं अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(४२)

बंधिका किन्न चेष्टेयम् चेष्टेयम् किन्न बंधिका ।
स्थित्वा ह्यचेष्टिते भावे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—इयं चेष्टा किं बंधिका न इयं चेष्टा किं बंधिका न अस्ति हि अचेष्टिते भावे स्थित्वा स्वे स्वयं स्वस्मै सुखी स्याम् ॥

अर्थ—यह चेष्टा क्या बंध करने वाली नहीं है ? यह चेष्टा क्या बंध करने वाली नहीं है ?···निश्चयसे मैं अचेष्टित भावमें रहकर अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(४३)

दुःखं द्वन्द्वश्च संतापो विपत्तृष्णान्ययोगतः ।
एकेऽनिष्टं न किंचिद्धि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–दुःखं द्वन्द्वः च संतापः विपत् तृष्णा अन्ययोगतः भवन्ति हि एके किंचित् अनिष्टं न अस्ति अतः एके स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—दुःख, द्वन्द्व और संताप, विपत्ति एवं तृष्णा ये सब अनर्थ अन्य पदार्थके संयोगसे होते हैं, निश्चयसे एक पदार्थमें कुछ भी अनिष्ट नहीं है इसलिये एक स्वरूप निज आत्मा में अपने लिये अपने आप स्वयम् सुखी होऊं ॥

(४४)

कषायविषयत्यागे स्वास्थ्यमन्तर्वहिर्द्वयम् ।
तत्त्यागो ज्ञानमात्रं हि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय–कषायविषयत्यागे अन्तर्वहिर्द्वयम् स्वास्थ्यं अस्ति हि ज्ञानमात्रं तत्त्यागः अस्ति अतः ज्ञानमात्रे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखीस्याम् ॥

अर्थ—कषाय और विषयके त्यागमें अन्तरंग और वहिरंग दोनों प्रकारका स्वास्थ्य है वास्तवमें ज्ञानमात्र स्थिति रहना ही कषायका त्याग है अतः मैं ज्ञानमात्र अपनेमें अपने अर्थ स्वयम् सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(४५)

परैः शरणमान्यत्वं नाशोऽशरणमान्यता ।
सुखं स्वः शरणं तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।

अन्वय–परैः शरणमान्यत्वं नाशः अस्ति च परैः अशरण मान्यता सुखं अस्ति, तत्त्वतः स्वस्मै स्वः एव शरणं अस्ति तस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।।

अर्थ–पर जीवोंसे अपनेको शरण मानना विनाश है और पर जीवोंसे अपनेको अशरण मानना सुख है, वास्तव में अपने लिये आप ही शरण है इस कारण मैं अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ।।

(४६)

दुःखमूलं स्वधीरन्ये न परेऽर्थाः परे परे ।
स्वच्युतिः सा च स्वस्थोऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ।।

अन्वय–अन्ये स्वधीः दुःख मूलं अस्ति परे अर्थाः न सन्ति यतः परे परे एव सन्ति च सा बुद्धिः स्वच्युतिः अस्ति अतः स्वस्थः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।।

अर्थ–अन्य पदार्थमें आत्मबुद्धि होना ही दुःखका कारण है पर पदार्थ दुःखके कारण नहीं है क्योंकि पर तो पर ही हैं जुदे हैं और वह आत्मबुद्धि आत्मासे च्युत होनेकी अवस्था ही है अतः मैंअपने में अपने अर्थ अपने द्वारा सुखी होऊं ।।

(४७)

स्वलक्ष्यतामहादुर्गस्तत्रत्यस्य न बाधनम् ।
तत्र गुप्तो न जेयोऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।

अन्वय—स्वलक्ष्यता महादुर्गः अस्ति तत्रत्यस्य बाधनं न अस्ति तत्रगुप्तः केन अपि जेयः न अस्ति अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।।

अर्थ–अपने आपका लक्ष्य होना एक महान किला है उस स्वलक्ष्यदुर्गमें रहने वालेके कोई बाधा नहीं है उसमें गुप्त (सुरक्षित-छुपा हुआ) आत्मा किसहीकेद्वारा जेय नहीं है अतः मैं अपने लक्ष्यरूप अपनेमें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ।।

(४८)

स्वलक्ष्यता सुधासिंधुस्तत्रस्य न तापनम् ।
तत्रविष्टः सदा शान्तः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।

अन्वय—स्वलक्ष्यता सुधासिंधुः अस्ति तत्र त्यस्य तापनम् न भवति तत्र आविष्टः अहं शांतः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।।

अर्थ—अपने आपपर लक्ष्य होना एक अमृतका समुद्र है उसमें अवगाहन करने वालेके सन्ताप नहीं होता उसमें प्रवेश करने वाला मैं शान्त होकर अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ।।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(४९)

पापोदये न हानिर्मे हानिः पापमये निजे ।
पापं परच्युतिस्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—पापोदये मे हानिः न अस्ति निजे पापमये सति हानिः अस्ति पापं परे च्युतिः एव अस्ति तस्मात् स्वे स्वयं स्वस्मै सुखी स्याम् ॥

अर्थ—पापके उदयमें मेरी हानि नहीं है परन्तु निज आत्मा के पापमय होनेपर हानि है पाप पर पदार्थमें गिरना ही है इसलिये मैं तो अपनेमें ही अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(५०)

पुण्योदये न लाभो मे लाभः पुण्यमये निजे ।
पुण्यं स्ववृत्तिता तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—पुण्योदये मे लाभः न किंतु निजे पुण्यमये सति लाभः वर्तते पुण्यं स्ववृत्तिता एव अस्ति तस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—पुण्यके उदयमें मेरा लाभ नहीं है किंतु निज आत्मा के पुण्यमय होनेपर लाभ है, पुण्य निज आत्मामें रहना ही तो है इसलियेअपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(५१)

प्राङ्मया चेष्टितं यत्तत्स्व कषाय विचेष्टितम् ।
अकषायः स्ववृत्तिःशं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—यत् मया प्राक् चेष्टितं तत् स्वकषाय विचेष्टितम् अकषायः स्ववृत्तिः अस्ति च सा स्वयं शं वर्तते तस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—जो मैंने पहिले चेष्टा की वह अपने कषायसे होने वाली चेष्टा है कषाय रहित भाव तो स्वमें रहना ही है और स्वयं सुख स्वरूप है इसलिये मैं अपनेमें अपने लिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(५२)

मनो वाक्कायिकी यावच्चेष्टेच्छातस्ततोऽसुखम् ।
सुखं स्वास्थ्यमनिच्छातत् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—यावत् मनो वाक्कायिकी विहिता चेष्टा अस्ति इच्छा एव वर्तते ततः असुखं भवति स्वास्थ्यं अनिच्छा अस्ति तत एव सुखं विद्यते अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—जितनी भी मन वचन काय सम्बन्धी की हुई चेष्टा है वह इच्छा ही तो है अर्थात इच्छाका व्यक्त स्वरूप है उससे दुःख होता है स्वमें स्थिति रूप भाव अनिच्छा है वह ही तो सुख है इसलिये मैं स्वमें ही स्वके अर्थ स्वयम् सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(५३)

भ्रमे नष्टे यदा स्वप्ने तथा भ्रान्तिर्हि सर्वदा ।
निष्क्रियोऽहं यतः स्वस्थः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-यथा भ्रमे नष्टे सति स्वप्नेभ्रांतिः प्रतीयते तथाहि सर्वदा सर्वं चेष्टा भ्रांतिः एव मन्तव्या यतः अहं निष्क्रियः अस्मि ततः स्वस्थः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ--जैसे भ्रमके नष्ट होनेपर स्वप्नमें देखा हुआ दृश्य भ्रम रूप प्रतीयमान होता है उसी प्रकार सर्व समय सारी चेष्टा भ्रमरूप समझना चाहिये क्योंकि मैं निष्क्रिय हूँ इसलिये मैं अपनेमें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

इति श्री मद्ध्यात्मयोगिना शान्तमूर्त्तिना न्यायतीर्थेण सिद्धांत-न्यायसाहित्यशास्त्रिणा पूज्यश्री १०५ क्षुल्लकमनोहरवर्णिना सहजानन्द स्वामिना विरचितायां सहजानन्दगीतायाम् स्वास्थ्यप्रकरकः पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ।

ओन्नमः सिद्धेभ्यः

षष्ठोऽध्यायः प्रारभ्यते

(१)

सर्वेऽर्थाः सर्वथाभिन्नाः कृत्यं किं तत्रवर्तते ।
ते सर्वे तेषु तिष्ठन्तु स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—सर्वे अर्थाः सर्वथा भिन्नाः सन्ति तत्र कृत्यं किं वर्तते ते सर्वे तेषु तिष्ठन्तु अहं हि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—सर्व पदार्थ सर्व प्रकार सभीसे भिन्न हैं उन पदार्थों में करने योग्य कार्य ही है क्या ? वे सब स्वयम् अपनेमें रहें मैं तो अपनेमें अपने आप अपने लिये सुखी होऊं ॥

(२)

चेष्टन्ते स्वकषायेण प्राणिनो मे न वाञ्छकाः ।
केषु मोदै च शोचै किं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-एते सर्वे प्राणिनः स्वकषायेण चेष्टन्ते मे वाञ्छकाः न सन्ति अतः केषु किं मोदै च केषु किं शोचै द्वौ ? स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—ये सब प्राणी अपने कषायसे चेष्टा कर रहे हैं मेरे चाहने वाले कोई नहीं है इसलिये मैं किनमें क्या हर्ष करूं और किनमें क्या शोक करूं अपनेमें अपने आप अपने लिये सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(३)

ये दृश्यास्ते न जानन्ति जानन्तो निर्विकल्पकाः ।
कं ब्रुवाणि क्व तुष्याणि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—ये दृश्याः सन्ति ते न जानन्तिः ये जानन्तः ते निर्विकल्पकाः सन्ति अतः अहं कं ब्रुवाणि क्व तुष्याणि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—जो दिखने योग्य हैं वे जानते नहीं हैं जो जानने वाले हैं वे स्वभावसे विकल्पशून्य हैं इसलिये मैं किसको बोलूं कहां संतोष करूं अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(४)

स्तोतारः क्षणिकाः सर्वे स्तुत्यंमन्यः क्षणक्षयी ।
तुष्यः कस्तोषकः कश्च स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—एते सर्वे स्तोतारः क्षणिकाः सन्ति स्तुत्यंमन्य क्षणक्षयी अस्ति पुनः कः तुष्यः च कः तोषकः अहं नु स्वे स्वयं स्वस्मै सुखी स्याम् ॥

अर्थ—ये सब स्तुति करने वाले लोग क्षणिक हैं मेरी स्तुति होती है ऐसा मानने वाला भी क्षणिक है फिर कौन तो सन्तोष करने योग्य है और कौन सन्तोष करने वाला है मैं तो अपनेमें अपने आप स्वके अर्थ सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(५)

स्तुत्यं वृत्तं क्षणस्थायि क्षणिका वाङ्मयी स्तुतिः ।
न मे वृत्तं न मे वाणी स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—स्तुत्यं वृत्तं क्षणस्थायि अस्ति वाङ्मयी स्तुतिः क्षणिका अस्ति पुनः मे वृत्तं न मे वाणी न अस्ति अहं नु स्वे स्वस्मै स्वयम् सुखी स्याम् ॥

अर्थ—स्तुति जिस घटनाके आश्रयसे की जाती है वह घटना क्षणभङ्गुर है वचनमयी स्तुतिका शब्द क्षणभङ्गुर है फिर मेरी न घटना है और मेरी न वाणी है मैं तो अपनेमें अपने आप अपने लिये स्वयम् सुखी होऊं ॥

(६)

लोकोऽसंख्योऽमितः कालोऽनन्ताः जीवाः कदा कदा ।
स्तोष्यन्ते क्व क्व के केऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—कालः अमितः लोकः असंख्यः अस्ति जीवाः अनन्ताः सन्ति कदा कदा क्व क्व के के स्तोष्यन्ते अतः प्रशंसाविकल्पं विहाय स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—काल अपरिमित अर्थात अनन्त है लोक असंख्यात प्रदेशी है जीव अनन्त हैं फिर कब कबतक कहाँ कहाँपर कौन कौन प्राणी स्तुति करेंगे इसलिये प्रशंसा के विकल्पको छोड़कर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने द्वारा सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(७)

स्वैकत्वेऽनुगताः स्वेभ्यः स्वस्यकुर्वन्ति ते क्रियाम् ।
भ्रान्त्या विमुह्य किं स्यानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ।।

अन्वय—स्वैकत्वे अनुगताः ते प्राणिनः स्वेभ्यः स्वस्य क्रियांकुर्वन्ति-भ्रांत्या विमुह्य स्वं किं स्यानि अहं नु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।।

अर्थ--अपने गुणोंमें परिणमन करते रहने वाले वे प्राणी अपने लिये अपनी क्रियाको करते हैं भ्रमसे विमोहित होकर अपने आपको क्यों घातूं ? मैं तो अपने में अपनेलिये स्वयम् सुखी होऊं ।।

(८)

पुण्यं पापं सुखं दुःखं चेष्टा वाणी च कल्पना ।
विडम्बनाः परात्सन्ति स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।

अन्वय—पुण्यं पापं सुखं दुःखं चेष्टा वाणी च कल्पनाः विडम्बनाः एताः सर्वाः विपदः परात् सन्ति अतः परदृष्टि विहाय स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।।

अर्थ—पुण्य, पाप, सुख, दुःख, चेष्टा, वचन और कल्पना विडम्बनायें, सब विपत्तियां पर निमित्तसे (परनिमित्त बिना नहीं होती अतः) होती इसलिये परदृष्टिको छोड़कर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ।।

(९)

सम्पदा विपदा भूयाज्ज्ञानमात्रोऽस्मि ते न मे ।
कुतस्तुष्याणि रुष्याणि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ।।

अन्वय—सम्पदा वा विपदा भूयात् अहं ज्ञानमात्रः अस्मि ते मे न स्तः पुनः कुतः तुष्याणि कुतः रुष्याणि स्वे स्वस्मै स्वय सुखी स्याम् ।

अर्थ—सम्पत्ति अथवा विपत्ति कुछ भी हो मैं तो ज्ञान मात्र हूँ सम्पत्ति और विपत्ति ये दोनों मेरी नहीं है फिर क्यों इसमें तोष करूं व रोष करूं ? मैं तो अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ।।

(१०)

अयशो वा यशो भूयाज्ज्ञानमात्रोऽस्मि ते न मे ।
कुतस्तुष्याणि रुष्याणि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।

अन्वय—अयशः वा यशः भूयात् अहं ज्ञानमात्रः अस्मि ते मे न स्तः पुनः कुतः तुष्याणि कुतः रुष्याणि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।।

अर्थ—अपकीर्ति अथवा कीर्ति कुछ भी हो मैं ज्ञान मात्र हूँ वे दोनों अर्थात अपयश और यश मेरे नहीं है फिर यश में क्या तोष करूं अपयशमें क्या रोष करूं मैं तो अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ।।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(११)

जीवनं मरणं भूयाज्ज्ञानमात्रोऽस्मि ते न मे ।
कुतस्तुष्याणि रुष्याणि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—जीवनं मरणं भूयात् अहं ज्ञानमात्रः अस्ति ते मे न स्तः पुनः कुतः तुष्याणि कुतः रुष्याणि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—जीवन अथवा मरण कुछ भी हो मैं तो ज्ञानमात्र हूं वे दोनों अर्थात जीवन और मरण मेरे नहीं हैं फिर जीवन में क्या तोष करूं और मरण में क्या रोष करूं मैं तो अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(१२)

मायास्था मयि हृष्टाः स्युः, रुष्टा मे ज्ञस्य का क्षतिः ।
कुतस्तुष्याणि रुष्याणि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—मायास्थाः मयिहृष्टाः स्युः अथवा रुष्टाः स्यु मे ज्ञस्य का क्षतिः अस्ति अतः कुतः तुष्याणि कुतः रुष्याणि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मायामें (क्षणिक पर्यायमें) रहने वाले लोग मुझपर खुश हों या रुष्ट हों मुझ ज्ञानशील आत्माकी क्या हानि है ? इसलिये खुश होने वालोंमें क्या संतोष करूं और रुष्ट होने वालोंमें क्या रोष करूं । मैं तो अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(१३)

ज्ञानी ज्ञानरतोऽज्ञानी मायास्थः परलोचकः ।
मायास्थवाचिको रोषः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—ज्ञानरतः ज्ञानी अस्ति मायास्थः अज्ञानी अस्ति च अतएव परलोचकः भवति अज्ञानित्वात् मायास्थ वाचिकः रोषः स्यात् अहं नु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—ज्ञानमें लीन पुरुष ज्ञानी है और मायास्थ (मायामें लीन पुरुष) अज्ञानी है और इसीलिये मायास्थ (अज्ञानी) पुरुष परकी निन्दा करने वाला होता है फिर अज्ञानी होने से मायास्थित पुरुषके वचनमें क्या रोष हो मैं तो अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(१४)

ये स्तुवन्ति च निन्दन्ति ते दृश्यं न तु मामिमम् ।
शंसा निन्दा न गुप्तस्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—ये स्तुवन्ति च निंदन्ति ते दृश्यं स्तुवन्ति च निंदंति तु इमम् मां न स्तुवन्ति निन्दन्ति च गुप्तस्य मम न शंसा न निन्दा अहं हि स्वे स्वस्मै स्वय सुखी स्याम् ।

अर्थ—जो स्तुति करते हैं व निंदा करते हैं वे दृश्यमूर्तिको ही स्तवन करते व निन्दते हैं परन्तु इस अमूर्तचैतन्यमय मुझको न स्तवते हैं न निन्दते हैं और अन्य आत्माओं केअनुभवमें न आने वाले मुझ ब्रह्मको न तो यहं प्रशंसा ही है न निन्दा ही है मैं तो अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(१५)

प्रशंसया न मे लाभो निन्दया का च मे क्षतिः ।
स्वं हन्म्येव विकल्पेन स्यां स्वे स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—प्रशंसया मे लाभः न च निन्दया मे का क्षतिः अस्ति केवलं स्वं विकल्पेन एव हन्मि अधुना विकल्पं विहाय स्वयं स्वे स्वस्मै सुखी स्याम् ॥

अर्थ—प्रशंसासे मेरा कोई लाभ नहीं है और निंदासे भी मेरी क्या हानि है मैं तो केवल विकल्पसे ही अपने को बरबाद कर रहा हूँ अब मैं विकल्पको छोड़कर अपनेमें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

(१६)

ज्ञानमात्रमहं तस्माज्ज्ञानादन्यत्करोमि किम् ।
किं त्यजानीह गृह्णीयाम् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अहं ज्ञान मात्रं अस्मि तस्मात् ज्ञानात् अन्यत् किं करोमि नु इह किं त्यजानि किं गृह्णीयाम् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मैं ज्ञानमात्र हूँ इस कारण ज्ञानके सिवाय अन्य क्या करता हूँ तो अब यहाँ क्या छोड़ूं क्या ग्रहण करूं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(३५)

संसारवाहिमूढेनासाम्यमभ्रान्तवेदिनः ।
अलिप्तो हि सदा शान्तः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अभ्रांत वेदिनः संसारवाहिमूढेन असाम्यं वर्तते हि अलिप्तः सदा शान्तः भवति अतः अलिप्तस्वभावे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—भ्रम रहित ज्ञाता पुरुषकी संसार ढोने वाले मूढ़के साथ समानता नहीं है निश्चयसे जो अलिप्त अर्थात परपदार्थ की वाञ्छासे रहित पुरुष है वह सदा शांत रहता है इसलिये अलिप्त है स्वभाव जिसका ऐसा मैं अपनेमें अपने अर्थ स्वयम् सुखी होऊं ॥

(३६)

रागद्वेषौ हि संसारो भ्रमात्तत्रोपयोजनात् ।
शुद्धं शान्तं विजानीयां स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—हि भ्रमात् तत्र उपयोजनात् रागद्वेषोसंसारः अस्ति अतः निर्भ्रमः सन् शुद्धं शांतं स्वं विजानीयाम् च स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—निश्चयसे भ्रमके कारण रागद्वेषोंमें उपयोग करने से यह रागद्वेष ही संसार है इसलिये भ्रम रहित होता हुआ मैं शुद्ध शान्त आत्माको जानूं और अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(१९)

अन्तर्वाह्यं जगत्सर्वं नश्वरं तत्र किं हितम् ।
कर्तव्यमितरद्व्यर्थं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।

अन्वय—सर्वं अन्तर्वाह्यं जगत् नश्वरं वर्तते तत्र किं हितं अस्ति ज्ञानात् इतरत् कर्तव्यं व्यर्थं अस्ति अतः ज्ञानमये स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।।

अर्थ—यह सर्व अन्तरङ्ग और वाह्य जगत विनाशीक है वहाँ क्या हित है जानने मात्रके सिवाय अन्य कर्तव्य व्यर्थ है इसलिये ज्ञानस्वरूप निजमें निजके अर्थ स्वयं सुखी होऊं ।।

(२०)

स्वतन्त्रोऽहं परास्तेषां तन्त्रो योगवियोगयोः ।
कथं हृष्याणि खिन्दानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ।।

अन्वय—अहं स्वतन्त्रः अस्मि पराः तेषां तंत्राः सन्ति पुनः तेषां योगवियोगयोः कथं हृष्याणि ? कथं खिन्दानि ? ···स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।।

अर्थ—मैं अपने तन्त्र हूँ पर-पदार्थ उन-उन ही पर-पदार्थोंके तन्त्र हैं फिर उनके संयोग और वियोगमें क्यों हर्ष करुं क्यों खेद करुं ? अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ।।

http://www.jainkosh.org

(२१)

ज्ञानेन ज्ञानमात्रोऽहं भवाम्यन्यगुणानपि ।
साक्षात्कर्तुः कुतः क्षोभः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ।।

अन्वय—अहं ज्ञानेन ज्ञानमात्रः भवामि अन्यगुणान् अपि केवलं साक्षात्कर्तुः मे कुतः क्षोभः स्यात् अहं नु स्वे स्वयं स्वस्मै सुखी स्याम् ।।

अर्थ—मैं ज्ञानके द्वारा ज्ञानमात्र ही रहता हूँ मुझ हीमें होने वाले अन्य गुणों तकको साक्षात्कार करनेवाले मुझ आत्माके कैसे क्षोभ हो मैं तो अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ।।

(२२)

ज्ञानस्य चेष्टयाऽचेष्टोऽचेष्टीभूतः कृती स्वयम् ।
अचेष्टनं द्वयोः सारः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।

अन्वय—आत्मा ज्ञानस्य चेष्टया अचेष्टः भवति च अचेष्टीभूतः स्वयं कृती भवति, द्वयोः सारः अचेष्टन् अस्ति अतः निष्क्रिये स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।।

अर्थ—आत्मा ज्ञानकी चेष्टासे चेष्टारहित हो जाता है और निश्चेष्ट हुआ आत्मा स्वयं कृतकृत्य हो जाता है दोनोंमें अर्थात ज्ञानकी चेष्टा व कृतकृत्य अवस्था दोनोंमें सार निश्चेष्ट भाव है अतः निष्क्रिय स्वरूप निज आत्मामें निजके अर्थ निज के द्वारा सुखी होऊं ।।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(२३)

ध्याने स्तुतौ च यात्रायां मनोवाक्कायखेदनम् ।
निर्विकल्पे कुतः खेदः स्यां स्वे स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—ध्याने स्तुतौ च यात्रायां मनोवाक्कायखेदनं भवति किंतु निर्विकल्पे कुतः खेदः स्यात् अतः निर्विकल्पस्वरूपे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—ध्यान, स्तुति और यात्रामें मनवचन कायके खेद होता है परन्तु निर्विकल्प अवस्थामें कहांसे खेद हो इसलिये मैं निर्विकल्प स्वरूप निज आत्मामें निज के अर्थ निजके द्वारा सुखी होऊं ॥

(२४)

विरक्तो विषयद्वेषी रक्तोऽस्ति विषयस्पृहः ।
साक्षी रक्तो विरक्तो न स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—विषयद्वेषी विरक्तः अस्ति च विषयस्पृहः रक्तः अस्ति किंतु साक्षी न रक्तः अस्ति च न विरक्तः अस्ति अहं नु साक्षिणि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—विषयोंका द्वेषी तो विरक्त है और विषयोंका चाहने वाला रक्त है परन्तु साक्षी पुरुष न तो रक्त है और न विरक्त है मैं तो साक्षी निज आत्मामें आत्मार्थ स्वयं सुखी होऊं ॥

(२५)

सुखं दुःखं स्तुतिं निन्दां कस्य कर्तुं हि कः क्षमः ।
किं श्रमं स्वच्युतेः कुर्याम् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—हि कस्य सुखं दुःखं स्तुतिं निन्दां कर्तुं कः क्षमः वर्तते ? पुनः स्वच्युतेः श्रमं किं कुर्याम् ? अहं स्वे एव स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—निश्चयसे किसका सुख दुःख स्तुति निन्दाको करने के लिये कौन समर्थ है ? फिर निज उपयोगसे च्युत होनेका परिश्रम क्यों करूं ? मैं तो अपनेमें ही अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

(२६)

सुखे दुःखे च को भेदो द्वयोराकुल्यवेदनम् ।
शान्ते ज्ञे स्वे रतो भूत्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—सुखे च दुःखे भेदः कः अस्ति द्वयोः आकुल्यवेदनं वर्तते ततः शान्ते ज्ञे स्वे रतः भूत्वा स्वयं स्वे स्वस्मै सुखी स्याम् ॥

अर्थ—सुख और दुःखमें अन्तर क्या है ? दोनोंमें आकुलता का अनुभव है इसीलिये मैं तो शान्त ज्ञानमय अर्थात सुख दुःखके विकल्पसे रहित निज आत्मामें निजके अर्थ स्वयम् सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(२७)

नृस्त्र्यो रूपे कुरूपे वा को भेदोऽशुचिता समा ।
आकुल्यकारणं तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–नृस्त्र्योः रूपे वा कुरूपे भेदः कः अस्ति चतुर्षु अशुचिता समा अस्ति च तत् सर्वं आकुल्यकारण एव अस्ति तस्मात् सर्वं उपेक्ष्य स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–मनुष्य और स्त्रीके सुन्दररूप और कुत्सित रूपमें भेद क्या है ? उन चारोंमें अपवित्रता समान है और वह सब आकुलताका ही तो कारण है इसलिये सबकी उपेक्षा करके अपनेमें अपने अर्थ स्वयं सुखी होऊं ॥

(२८)

सम्पद्विपत्सु को भेदः क्षोभजाड्य करीषु वै ।
शान्ते ज्ञे स्वे रतोभूत्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–क्षोभ जाड्यकरीषु सम्पद्विपत्सु भेदः कः वर्तते अतः शान्ते ज्ञे स्व रतः भूत्वा स्वे स्वस्मै स्वय सुखी स्याम् ।

अर्थ–क्षोभ और जड़ता (किंकर्तव्य विमूढ़ता) को उत्पन्न करने वाली होनेसे सम्पत्ति और विपत्तियों में अन्तर क्या है ? इसलिये मैं तो शान्त ज्ञानमय (सम्पत्ति विपत्ति के केवल ज्ञातारूप) अपनेमें आत्मार्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

(२९)

सेवा सेवे समे चेष्टे कषायस्याघपुण्ययोः ।
फले ज्ञप्तिस्तु तत्वंमे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय–सेवासेवे कषायस्य चेष्टे च अघपुण्ययोः फले समेस्तः तु मे तत्वं ज्ञप्तिः एव अतः ज्ञप्ति मये स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–उपकार और अनुपकार ये दोनों कषायकी चेष्टायें और पाप पुण्यके फल समान ही तो हैं मेरा तत्त्व तो ज्ञप्ति रूप अवस्था ही है इसलिये ज्ञान क्रियामय अपनेमें आत्मार्थ स्वयं सुखी होऊं ।।

(३०)

सर्वेऽनन्त गुणोपेता न स्तुतौ पूर्णवर्णनम् ।
किं कं कथंस्तुयां तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय–सर्वेजीवाः अनन्तगुणोपेताः सन्ति स्तुतौ पूर्णवर्णनम् न भवितुं शक्नोति पुनः कं किं कथं स्तुयाम् तस्मात् तं श्रमं परित्यज्य स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–सब जीव अनन्त गुणसहित हैं स्तुतिमें किसीका पूरा वर्णन हो ही नहीं सकता है फिर किसकी क्या कैसे स्तुति करूं इसलिये मैं ही तो अब उस परिश्रमको छोड़कर अपनेमें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

(३१)

प्रयोजनं न मे मत्तोऽन्यत्तत्सिद्धिर्नवान्यतः ।
किं कं कथंस्तुयां तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—मे प्रयोजनं मत्तः अन्यत् किंचित् न अति च तत् सिद्धिः अपि अन्यतः न अस्ति अतः कं किं कथंस्तुयाम् तस्मात् तं श्रमं परित्यज्य स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मेरा प्रयोजन मुझसे अन्य और कुछ नहीं है और उस प्रयोजनकी सिद्धि भी अन्यसे नहीं है फिर किसकी क्या कैसे स्तुति करूं । इसलिये मैं तो अब उस परिश्रम को छोड़कर अपनेमें ही रहकर अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(३२)

तेषामौपाधिका भावा आसन् ये सन्ति निर्मलाः ।
किं कं कथं च निंदानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—सम्प्रति ये सिद्धाः निर्मलाः सन्ति तेषां सिद्धानां अपि औपाधिकाः भावाः प्राक आसन् पुनः कं किं च कथं निंदानि अतः निंदाखेदं परित्यज्य स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—वर्तमानमें जो सिद्ध निर्मल हैं उन सिद्धोंके भी औपाधिक भाव पहिले थे, फिर मैं किसकी क्या और कैसे निंदा करूं इसलिये निन्दाके खेद को दूर करके मैं अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(३३)

नैर्मल्यं नान्यनिंदातो मालिन्यं शल्यमेव च ।
किं कं कथं च निंदानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—अन्यनिंदातः नैर्मल्यं न भवति प्रत्युत मालिन्यं च शल्यं एव वर्द्धते, पुनः कं किं च कथं निंदानि ? अतः निंदाखेदं परित्यज्य स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—अन्यपुरुषकी निंदासे निर्मलता (पवित्रता) नहीं रहती बल्कि मालिन्य और शल्य ही बढ़ता है फिर किसकी क्या और कैसे निंदा करूं ? इसलिये निंदाके खेद को त्यागकर मैं अपनेमें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

(३४)

प्रशंसकेन दत्तं किं क्षोभं कृत्वा पलायितः ।
किं हितं तेन किं रोचै स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—प्रशंसकेन किं दत्तम् ? स तु क्षोभम् कृत्वा पलायितः, तेन मे किं हितं अस्ति ? तस्मै किं रोचै ? अहम् नु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—प्रशंसा करनेवाले पुरुषने दे क्या दिया ? वह तो क्षोभ करके भाग गया··· अपने स्थान ही गया । उसके द्वारा मेरा क्या हित है ? उसके अर्थ मैं क्या राग करूं ? मैं तो अपने में अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(३५)

निन्दकेन हृतं किं मे दोषमुक्त्वा स्थिरीकृतः ।
का क्षतिस्तेन किं शोचै स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–निंदकेन मे किं हृतम् ? …तेन तु दोषं उक्त्वा अहं स्थिरीकृतः, तेन मे का क्षतिः भूतः ? किं शौचै ? अहं हि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ–निंदा करने वालेने मेरा क्या हर लिया ? उसने तो दोष कहकर मुझे स्थिर और सावधान ही किया उसके द्वारा मुझे क्या हानि हुई ? क्यों शोक करूं ? मैं तो मैं अपनेमें अपनेलिये अपने द्वारा सुखी होऊं ॥

(३६)

ज्ञप्तिक्रियस्य मे वृत्तौ निवृत्तौ चाग्रहः कुतः ।
यत्कर्तुं मति चायातु स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–ज्ञप्तिक्रियस्य मे वृत्तौ च निवृत्तौ कुतः आग्रहः स्यात् ? यत् किञ्चत् अपि कर्तुं आयातु अहं नु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम्॥

अर्थ–ज्ञप्ति अर्थात जानना ही है क्रिया जिसकी ऐसे मुझ आत्माके प्रवृत्ति और निवृत्तिमें क्यों आग्रह हो ? जो कुछ करनेमें आवे, हो, मैं तो अपनेमें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(३७)

मानापमानता मोहे पर्यायस्य न चान्यथा ।
तद्विविक्तस्य न क्षोभः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—मोहे सति च पर्यायस्य मानापमानता भवति तद्विविक्तस्य क्षोभः न भवति अतः तद्विविक्ते स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–मोहके होने पर…और…पर्याय का ही मान और अपमान होता है । पर्यायसे भिन्न दृष्टिवाले आत्माके क्षोभ नहीं होता इसलिये पर्यायसे भिन्न निज आत्मा में अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

(३८)

परान् शिक्षे परैः शिष्ये मोहचेष्टैव नान्यतः ।
गुणोह्यन्येऽविकल्पोऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय–अहं परान् शिक्षै च परैः शिष्ये इति मोहचेष्टा एव अस्ति, हि अन्यतः अन्ये गुणः न आयाति अतः अविकल्पः सन् स्वे स्वयं स्वस्मै सुखी स्याम् ॥

अर्थ–मैं पर जीवोंको शिक्षा देता हूँ और परके द्वारा मैं सीख पाता हूँ यह मोहकी चेष्टा ही है निश्चयसे अन्य पदार्थसे अन्य पदार्थमें गुण नहीं आता इसलिये मैं विकल्पोंसे रहित होता हुआ अपनेमें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(३९)

स्वद्रव्यक्षेत्रभावानामाप्तौ भवति शुद्धता ।
नान्यभावविकल्पोऽस्तु स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—स्वद्रव्यक्षेत्रभावानां आप्तौ शुद्धता भवति अतः अन्यभाव-विकल्पः न अस्तु, यतः अहं स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—अपने योग्य द्रव्य क्षेत्र भावकी प्राप्ति होनेपर शुद्धावस्था होती है इसलिये अन्यभावके विकल्प ही न हों जिससे मैं अपनेमें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

(४०)

कर्म कर्महिताय स्याच्चेदहं स्वहिताय हि ।
हितं नैर्मल्यभावोऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—यदि कर्म कर्महिताय स्यात चेत हि अहम् स्वहिताय अस्मि हितम् नैर्मल्यभावः अस्ति अतः निर्मलस्वभावे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ— यदि कर्म कर्मके हितके लिये अर्थात कर्मकी वृद्धिके लिये है तो निश्चयसे मैं भी अपने हितकेलिये हूँ हित निर्मल परिणाम ही है इसलिये मैं निर्मल स्वभावरूप अपनेमें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

(४१)

ज्ञानी शत्रु: कुतो मित्रमज्ञः कस्य सुहृद्रिपुः ।
स्वपरस्थः सुहृच्छत्रु: स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—ज्ञानी कुतः शत्रुः मित्रं भवति च अज्ञः कस्य सुहृत रिपुः भविता, हि स्वपरस्थः अयं आत्मा स्वस्य सुहृत् शत्रुः भवति अतः मित्रस्वरूपे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—आत्मस्वरूपका जाननेवाला कैसे शत्रु मित्र हो सकता और आत्माको न जानने वाला किसका मित्र, शत्रु होगा, निश्चयसे स्वमें स्थित यह मैं ही अपना मित्र हूं और परमें स्थित यह मैं ही अपना शत्रु हूं इसलिये मित्र स्वरुप निज आत्मामें अपने अर्थ अपने द्वारा सुखी होऊं ॥

(४२)

स्वैकत्वस्याप्त्युपायो मे साम्यं नान्यत्कदापि हि ।
साम्यघातः परे बुद्धेः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—स्वैकत्वस्य आप्त्युपायः हि मे साम्यं अस्ति अन्यत् न अस्ति न भूतं न भविष्यति, परे बुद्धेः साम्यघातः भवति अतः पर-बुद्धि विहाय स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—अपने एकत्व स्वभावकी प्राप्तिका उपाय निश्चय मेरे समतापरिणाम हो है, इसके अतिरिक्त अन्य उपाय कभी भी न है, न हुआ, न होगा । समता का विघात परमें बुद्धि होनेसे होता है इसलिये पर बुद्धिको छोड़कर मैं अपनेमें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(४३)

साम्यं विशुद्धविज्ञानं साम्यंरागविवर्जितम् ।
साम्यं स्वास्थ्यं सुखागारः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।

अन्वय—साम्यं विशुद्धविज्ञानं अस्ति, साम्यं रागविवर्जितं अस्ति, साम्यं स्वास्थ्यं च सुखागारः अस्ति अतः साम्यस्वरूपे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।।

अर्थ—साम्यभाव निर्मलविज्ञान है, साम्यभाव रागद्वेषसे रहित परिणाम है, साम्यभाव निज आत्मामें आत्मार्थ अपने द्वारा सुखी होऊं ।।

(४४)

मुनिन्द्रै रपि पूज्यं तत्साम्यं सर्वोत्तमं पदम् ।
साम्यं स्वस्य स्वयम् रूपं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ।।

अन्वय—तत् साम्यं मुनीन्द्रै: अपि पूज्यं च सर्वोत्तमं पदं अस्ति साम्यं स्वस्य स्वयं रूपं अस्ति अतः स्वे स्वस्मै स्व सुखी स्याम् ।।

अर्थ—वह साम्यभाव मुनीन्द्रोंके भी द्वारा पूजनीय और सर्वमें उत्तम सारस्वरूप पद है, समता…निज आत्मा का ही सहज रूप है इसलिये मैं निज आत्माके लिये निज आत्माके द्वारा सुखी होऊं ।।

http://www.jainkosh.org

(४५)

मानापमानयोः साम्यं कीर्त्यकीर्त्योः सुखासुखे ।
व्यग्रता पश्यतो न स्यात्…स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ।।

अन्वय—मानापमानयोः कीर्त्यकीर्त्योः सुखासुखे साम्यं पश्यतः आत्मनः व्यग्रता न स्यात् ततः साम्यस्वरूपे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।।

अर्थ—मान और अपमानमें कीर्ति और अकीर्तिमें सांसारिक सुख और दुःखमें समानताको देखनेवाले आत्माके व्यग्रता नहीं होती इसलिये साम्यस्वरूप निज आत्मा में आत्मार्थ स्वयम् सुखी होऊं ।।

(४६)

शंसा निन्दा विपत्सम्पत्स्वाकुलतैव केवलम् ।
नैर्द्वन्द्वयं ज्ञानमात्रेऽस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।

अन्वय—शंसा निंदा विपत् सम्पत् केवलं स्वाकुलता एव अस्ति, ज्ञानमात्रे स्वे नैर्द्वन्द्वयं अस्ति अस्मात् स्वयं स्वे स्वस्मै सुखी स्याम् ।

अर्थ—प्रशंसा, निंदा, विपत्ति, सम्पत्ति ये सब केवल अपनी आकुलता ही है ज्ञानमात्र निज आत्मामें द्वन्द्वता का अभाव ही है इसलिये मैं तो निज आत्मामें ही आत्मार्थ स्वयम् सुखी होऊं ।।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(४७)

अन्यवृत्ते न मे वाधा वाधा स्वस्य विकल्पतः ।
प्रज्ञयाऽनाश्रयीकृत्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अन्यवृत्तेः मे वाधा न अस्ति वाधा स्वस्य विकल्पतः भवति अतः प्रज्ञया विकल्पं अनाश्रयीकृत्य स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—अन्य पदार्थ की परिणतिसे मेरीबाधा नहीं है बांधा स्वयं के विकल्पसे होती है इसलिये प्रज्ञाके द्वारा विकल्पको अनाश्रित करके मैंअपनेमें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

(४८)

स्वाख्येच्छाजाऽन्यनिंदा स्यात्तस्मान्निन्द्यो हि निंदकः ।
स्व दृष्ट्वाऽनिंदकाऽनिंद्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-अन्यनिन्दा स्वाख्येच्छाजा स्यात् तस्मात् हि निंदकः निंद्यः अस्ति अहं किल अनिंदकानिन्द्यं स्वं दृष्ट्वा स्वेस्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ—अन्य पुरुषकी निंदा अपनी प्रसिद्धिकी इच्छासे जायमान होती है इसलिये नियमसे निंदा करने वाला निंद्य ही है, मैं तो अनिंदक और अनिंद्य स्वरूप निज आत्माको देखकर अपनेमें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

(४६)

सर्वे समाः समे मैत्री मैत्र्या शांतिर्मतेह च ।
सुखं साम्यं हि तत्स्वास्थ्ये स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—सर्वे जीवाः समाः सन्ति, समे मैत्री प्रवर्तते च इह मैत्र्या शांतिः मता । हि शान्तिमूलं सुखं ततं साम्यं स्वास्थ्ये भवति अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—सर्व जीव स्वभाव कर समान हैं, समानमें ही मैत्री होती है और इस लोकमें मैत्री भावसे शांति मानी गई है । निश्चयसे शान्तिका मूल, सुख स्वरूप वह साम्यभाव स्वकी स्थितिमें होती है अतः स्वमें ही स्वके अर्थ स्वयम् सुखी होऊं ॥

(५०)

इष्टे न हर्षभावश्चेदनिष्टे स्यान्न खेदता ।
रुन्ध्वेष्टेच्छां स्वबोधेन स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—इष्टे हर्षभावः न स्यात् चेत् अनिष्टे खेदता न स्यात् अतः स्वबोधेन इष्टेच्छां रुन्ध्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—इष्ट पदार्थके संयोगमें यदि हर्षभाव न हो तो इष्ट के न रहने पर खेद भी न होगा अतः आत्मज्ञानके द्वारा इष्टकी इच्छाको रोककर मैं अपनेमें अपने आप अपने लिये स्वयम् सुखी होऊं ॥

Report any errors at: vikasnd@gmail.com

(५१)

आत्मरूपेऽन्ययोगो न वियोगस्य च का कथा।
कथं हृष्याणि खिन्दानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं॥

अन्वय–आत्मरूपे अन्ययोगः न अस्ति पुनः वियोगस्य कथा एव का स्यात् तर्हि कथं हृष्याणि च कथं खिन्दानि, स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम्॥

अर्थ–आत्माके स्वरूपमें अन्य किसी भी पदार्थका सम्बन्ध ही नहीं है फिर वियोगकी तो कथा ही क्या हो, तब क्या हर्ष करूं? क्या खेद करूं? अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं॥

(५२)

कल्पितेऽर्थेऽनुतर्केऽशं शमन्वर्थे च कल्पिते।
स्वतन्त्रोर्थो हि सर्वोऽतः स्यां स्वे स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं॥

अन्वय—अर्थे अनुतर्के कल्पिते सति अशं भवति च अन्वर्थे कल्पिते सति शं भवति हि सर्वः अर्थः स्वतन्त्रः अस्ति अतः स्वतन्त्रे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम्॥

अर्थ—पदार्थके बुद्धिके अनुसार कल्पना किये जानेपर सुख शांतिका अभाव है और पदार्थके अनुसार कल्पना किये जानेपर सुखशांतिका मार्ग है, निश्चयसे सब पदार्थ स्व स्वके ही आधीन है इसलिये मैं स्वके तन्त्र ही होने वाले निज आत्मामें आत्मार्थ स्वयं सुखी होऊं॥

http://www.jainkosh.org

(५३)

हृद्यसाम्यं रतौ मोहे तस्माज्ज्ञायक रूपिणम्।
जानन्मुक्त्वा रतिं मोहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्॥

अन्वय–रतौ मोहे सति हृदि असाम्यं भवति तस्मात् ज्ञायक रूपिणम् जानन् रतिं मोहं मुक्त्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम्॥

अर्थ–राग और मोहके होनेपर हृदय में समताका अभाव हो जाता है इसलिये ज्ञायक स्वरूप वाले निज आत्माको जानता हुआ रति और मोह को छोड़कर मैं अपनेमें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं॥

(५४)

यस्मिन् साम्ये विनष्टाः स्युराशा साम्यं सदास्तु तत्।
साम्येन सहजानन्दः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्॥

अन्वय—यस्मिन् साम्ये सति आशाः विनष्टाः स्युः तत्, साम्यं सदा अस्तु हि साम्ये न अयं आत्मा सहजानन्दः भवति अतः साम्य स्वरूपे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम्॥

अर्थ—जिस समता परिणामके होनेपर आशायें विनष्ट हो जाती हैं वह साम्यभाव सदा रहो निश्चयसे समता परिणाम के द्वारा ही यह आत्मा सहज आनंद वाला होता है इसलिये समता स्वरूप मय निज आत्मामें आत्मार्थ स्वयम् सुखी होऊं॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(५५)

श्रद्धावृत्तं श्रुतं ज्ञानं सत्यं साम्यं भवेद्यदि ।
तदेव स्वसुखं स्वास्थ्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय–श्रद्धा वृत्तं श्रुतं ज्ञानं तदा सत्यं अस्ति यदि साम्यं भवेत् तत एव स्वसुखं तत् स्वास्थ्यं अस्ति अत: स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—श्रद्धा, चारित्र, आगमाभ्यास, ज्ञान तब सत्य है जबकि समता परिणाम हो वहं समता परिणाम ही तो आत्म सुख और वह साम्य भाव स्वमें स्थिति होनेकी दशा है इसलिये अपनेमें ही अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

———

इति श्री मद्ध्यात्मयोगिना शान्तमूर्त्तिना न्यायतीर्थेण सिद्धांत-न्यायसाहित्यशास्त्रिणा पूज्यश्री १०५ क्षुल्लकमनोहरवर्णिना सहजानन्द स्वामिना विरचितायां सहजानन्दगीतायाम् साम्यप्ररूपकः षष्ठो-ऽध्यायः समाप्तः ।

ओन्नमः सिद्धेभ्यः

सप्तमोऽध्यायः प्रारभ्यते

(१)

कौ दृश्यं नश्वरं सर्वं दुःखमूलं पृथक् हि तत् ।
निन्द्यं हेयमतस्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—कौ दृश्यं सर्वं नश्वरं अस्ति च तत् हि पृथक विलसति दुःख मूलं वर्तते । अत: अदः निन्द्यं च हेयं अस्ति तस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—इस संसारमें दृश्यमान सब पदार्थ विनाशीक हैं और निश्चय से पृथक-पृथक ही अपनेमें हैं और दुःखका निमित्त हैं इसलिये यह दृश्य निन्द्य है हेय है इस कारण मैं तो अपनेमें अपने लिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(२)

न कोऽपि शरणं भूतो न च कश्चिद्भविष्यति ।
शरणस्य भ्रमं हत्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–मम कः अपि शरणं न भूतं च न कश्चित् भविष्यति अत: शरणस्य भ्रमं हत्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–मेरा कोई भी शरण न हुआ और न कोई होगा इसलिये शरणके भ्रमको हटाकर अपनेमें अपने लिये स्वयम् सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(३)

न भूतो न भविष्यामि कस्यचिच्छरणं कदा ।
कर्तृत्व वारुणीं क्षिप्त्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय–अहं कदा कस्य चित् शरणं न भूतः च न भविष्यामि अतः कर्तृत्ववारुणीं क्षिप्त्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–मैं कभी भी किसीका शरण न हुआ और न हो सकूंगा इसलिये कर्तृत्व बुद्धिकी मदिराको फेंककर मैं अपनेमें अपने लिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(४)

बन्धुर्मित्र सुतो दारा भृत्यः शिष्यः प्रशंसकः ।
एभ्यो मे न हितं शक्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–बन्धुः मित्रं सुतः दारा भृत्यः शिष्यः प्रशंसकः एभ्यः मे हितं न शक्यं अहं नु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–बन्धु मित्र पुत्र स्त्री नौकर शिष्य प्रशंसक इन किन्हीं से भी मेरा हित नहीं हो सकता मैं तो अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(५)

मृत्यौ सत्यां न यास्यन्ति केऽपि ये रागदर्शिनः ।
केभ्यः कुर्यामसद्ध्यानं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय–ये के अपि रागादिदर्शिनः सन्ति ते मृत्यौ सत्यां सह न यास्यन्ति पुनः केभ्यः असद्ध्यानं कुर्याम् अहं हि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–जो कोई भी राग आदिके दिखाने वाले हैं वे मरण होने पर साथ नहीं जावेंगे फिर किनके लिये खोटा करूं मैं तो अपनेमें अपने लिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(६)

यथात्रत्यस्य नार्थाः प्रागन्यत्रमे न केऽपि मे ।
क्व हितं क्व सुखं मृज्यां स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय–यथा अत्रत्यस्य मम प्राग्भवा अर्थाः न सन्ति तथा अन्यत्र भविष्यतः मे इमे के अपि अर्थाः न भविष्यन्ति क्व हितं मृज्याम् क्व सुखं मृज्याम् अहं हि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ–जैसे यहाँ रहने वाले मुझ आत्माको पहले भवमें हुए अर्थ कुछ भी नहीं है उसी प्रकार आगे अन्यभव में रहने वाले मुझको ये कोई भी पदार्थ कुछ भी नहीं होंगे । कहां हित खोजूं कहां सुख खोजूं मैं तो अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(७)

आस्तां दूरे पुरे वासः संगो दूरे जनैषिणाम् ।
दूरे प्रशंसकाः सन्तु स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय–पुरे वासः दूरे आस्ताम् जनैषिणां संगः दूरे आस्ताम् प्रशंसकाः दूरे सन्तु अहं हि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-नगरमें निवास दूर रहो लोकैषणावालों का संग दूर रहो प्रशंसा करने वाले दूर होओ मैं तो अपनेमें अपनेलिये स्वयम् सुखी होऊं ॥

(८)

सुखं सत्वं हितं तत्र तेभ्यः किंचिन्न वर्तते ।
न च वत्स्यामि तत्राहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय–तत्र तेभ्यः मे सुखं सत्वं च हिते किञ्चित् अपि न वर्तते तत्र अहं न वत्स्यामि अहं हि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ–उन सब वाह्य अर्थोंमें उनसे मेरा सुख सत्व और हित कुछ भी नहीं है वहां मैं न बसूंगा मैं तो अपनेमें अपने लिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(९)

दुःखं सुखं विपत्सम्पत् कल्पना मात्रमेव तत् ।
किं भिन्नं खेददं कल्पै स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–दुःखं सुखं विपत् सम्पत् प्रभृतितत् कल्पनामात्रं एव अस्ति अहं तत् भिन्न खेदद किं कल्पै अहं स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–दुःख सुख विपत्ति और सम्पत्ति आदि वह सब कल्पना मात्र ही है मैं उस भिन्न और खेदके निमित्त की क्यों कल्पना करूं मैं तो अपनेमें अपने आप सुखी होऊं ॥

(१०)

पराधीनं सुखाभासं परकीयां कृतिं मुधा ।
लब्धुं क्लिश्नानि किं स्वस्थः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं।

अन्वय—पराधीनं सुखाभासं परकीयां कृतिं लब्धुं मुधा किं क्लिश्नानि अहं हि स्वस्थः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–परके निमित्त से होने वाले सुखाभासको व परपदार्थ की परिणतिको पानेके लिये मैं व्यर्थ क्यों क्लिष्ट होऊँ मैं तो स्व आत्मामें स्थित होता हुआ अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(११)

स्वच्युतेर्हेतवो भोगा अशान्तिर्भोगवेदनम् ।
चेष्टैकिमेतदर्थज्ञः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–भोगः स्वच्युतेः हेतवः सन्ति च भोग वेदनं अशान्तिः वर्तते एतर्थं ज्ञः अहं हि किं चेष्टै अहं हि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–भोग आत्मासे च्युत होनेके निमित्त हैं और भोगका अनुभव अशान्तिरूप परिणाम है इसकेलिये ज्ञानशील मैं क्या चेष्टा करूं मैं तो अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(१२)

स्वयं भिन्ने च किं हेयं भिन्ने काऽऽदेयता मम ।
अन्तर्क्यो ज्ञान मात्रोऽहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–अर्थे स्वयं भिन्ने हेयं किं अस्ति च भिन्ने सति मम आदेयताः का अस्ति अहं अतर्क्यः ज्ञानमात्रः अस्मि अतः पर बुद्धि विहाय स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–पदार्थोंके स्वयम् ही जुदे रहनेपर हेय क्या है और भिन्न होनेपर मुझे ग्रहण करनेको ही क्या है मैं तो तर्कसे परे ज्ञानमात्र हूँ इसलिये पर बुद्धिको छोड़ कर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(१३)

किंचिदिष्टमनिष्टं न कल्पना क्लेशदा भ्रमे ।
नाहमज्ञानरूपोऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–इह न किंचित् इष्टं न किंचित् अनिष्टं किंतु भ्रमे क्लेशदा कल्पना भवति अहं अज्ञान रूपः न अस्मि अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–इस संसार में न तो कुछ इष्ट है न कुछ अनिष्ट है किंतु भ्रम होनेपर क्लेश देने वाली कल्पना ही मात्र होती है मैं तो अज्ञान (भ्रम) रूप नहीं हूँ इसलिये मैं अपनेमें अपने लिये स्वयम् सुखी होऊं ॥

(१४)

भोगश्रमेणदुःखानि भ्रान्त्या भुक्त्वा हतं जगत् ।
आयापायेऽपि तापोऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–भ्रान्त्या भोगश्रमेण दुःखानि भुक्वा हा जगत् हतम् अपि आयापाये तापः अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–भ्रमसे भोगके परिश्रमसे दुःखोंको भोग करके हाय जगत बरबाद हुआ और तो क्या भोगके आय और विनाशमें सन्ताप हो जाया करता इसलिसे उस सन्ताप से दूर रहकर मैं अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(१५)

व्रतेऽप्यहंत्वमज्ञत्वं सयोगी ज्ञो न दुःखभाक् ।
प्रीतिर्मे नास्तु कस्मिंञ्चित्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—व्रते अपि अहंत्वं अज्ञत्वं अस्ति यस्य तत् स योगीज्ञः न अस्ति केवलं दुःखभाक् वर्तते अतः मे कस्मिंश्चित् प्रीतिः न अस्तु अहं हि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—व्रतमें भी अहं बुद्धिता होना अज्ञान है जिसके यह अहन्ता है वह योगी ज्ञानी नहीं है केवल दुःखका पात्र है इस लिये मेरी किसी भी पदार्थमें प्रीति न हो मैं तो अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(१६)

कातरो लोक दृष्ट्यास्मि स्यां लोका न सहाटिनः ।
मोहस्वप्नमिदं दृश्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अहं लोक दृष्ट्या कातरः अस्मि स्यां लोकाः सहाटिनः न सन्ति इदं दृश्यं मोह स्वप्न अस्ति तं उपेक्ष्य स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मैं लोकोंकी दृष्टिसे कायर हूँ, होऊं, लोक साथ भ्रमण करने वाले नहीं हैं यह दिखनेवाला समस्त अर्थ मोह रूपी नींदमें स्वप्न है उसको उपेक्षा करके मैं अपनेमें अपने लिये अपने अर्थ सुखी होऊं ॥

(१७)

स्व वाह्ये न हितं किञ्चित किं कल्पै शृणवानि किम् ।
जानानि किञ्चि पश्यानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—स्व बाह्ये किंचित् अपि हितम् न अस्ति पुनः किं कल्पै किं शृणवानि किं जानानि किं पश्यानि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—अपनेसे वाह्य स्थानमें कहीं कुछ भी हित नहीं है फिर क्या सोचं क्या सुनूं क्या जानूं और देखूं मैं तो अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(१८)

देहोऽस्तु वा न को लाभः, का हानिर्मे तु शांति दा ।
ज्ञानदृष्टिः सदा भूयात्, स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—देहः अस्तु तेन कः लाभ देहः न अस्तु का हानिः तु शान्तिदा ज्ञान दृष्टिः मे सदा भूयात् यतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—देह हो उससे क्या लाभ है अथवा देह न हो उससे क्या हानि है परन्तु शांति देने वाली ज्ञान दृष्टि मेरे सदा होओ जिससे मैं अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(१९)

न मे द्वन्द्वो न मे संगः सर्वकृत्यं हि मत्पृथक् ।
कस्मै स्यामाकुलोऽद्वैतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—मे द्वन्द्वः न मे संगः न हि सर्वकृत्यं मत् पृथक् अस्ति कस्मै आकुलः स्यात् अद्वैतः एषः अहं स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मेरे द्वन्द्व नहीं है मेरे परिग्रह सम्बन्ध नहीं है नियम से यह सब कार्य मुझसे पृथक है किसके लिये आकुल होऊं एकाकी यह मैं आत्मा अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(२०)

सर्वसार मिदं कार्यं निवृत्तिः सर्वकार्यतः ।
ततो विस्मृत्य सर्वाणि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—सर्वसारं इदं कार्यं अस्ति यत् सर्व कार्यतः निवृत्तिः स्यात् ततु, सर्वाणि विस्मृत्य स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—सर्वमें सार यह ही एक कार्य है जो सर्वकार्यसे निवृत्ति हो इसलिये सर्वको भूलकर अब मैं अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(२१)

पुण्यार्थ भोग सम्बन्धाः सन्त्यनर्थपरम्पराः ।
एषु कृत्यां हितं किं मे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—पुण्यार्थ भोग सम्बन्धाः अनर्थपरम्पराः सन्ति एषु किं कृत्यं च मे हितम् किं अहं नु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—पुण्य अर्थ व भोगके सम्बन्ध अनर्थकी परम्पराएं हैं इनमें क्या करने योग्य है व क्या मेरा हित रूप है मैं तो अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(२२)

जीवनं मरणं किं को लोकः का चास्ति लीनता ।
माया रूपाणि सर्वाणि स्यां स्वे स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—जीवनं किं मरणं किं कः लोकः च का लीनता अस्ति सर्वाणि माया रूपाणि सन्ति अहं हि स्वयं स्वस्मै स्वे सुखी स्याम् ॥

अर्थ—जीवन क्या है मरण क्या है क्या लोक है और क्या मग्नता है सब माया स्वरूप है मैं तो स्वयम् अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Version 1

(२३)

सर्वचिंता कथा चेष्टाभिरलं तासु नो हितम् ।
यतो निष्क्रियभावोऽहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—सर्व चिन्ता कथा चेष्टाभि: अलं तासु हितम् नो अस्ति यत: अहं निष्क्रिय भावा: अस्मि तस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—सर्वचिंतन वचन व चेष्टाओंसे क्या लाभ है उनमें हित कुछ भी नहीं है क्योंकि मैं तो निष्क्रिय स्वरूप हूँ इसीलिये मैं अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(२४)

चैतन्ये मयि नो देहो न प्राणा इन्द्रियाणि वा ।
रागादिस्तान् कथंयानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—चैतन्ये मयि देह: नो अस्ति प्राणा: वाइन्द्रियाणि न सन्ति रागादि: अपि न वर्तते पुन: तान् कथंयानि अहम् हि स्वयं स्वस्मै स्वे सुखी स्याम् ॥

अर्थ— चैतन्य स्वरूप मुझ आत्मामें शरीर नहीं है प्राण अथवा इन्द्रियाँ नहीं हैं राग आदि विभाव भी मुझमें नहीं वर्तता है फिर उन सबको मैं क्यों ढोऊं मैं तो अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(२५)

क्षेमंकरोऽक्षभोगो न तत्राज्ञ: सन् कथं रमै ।
क्षेमंकर: स्वयं स्वस्मै स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अक्षभोग: क्षेमंकर: न अस्ति तत्र अहं अज्ञ: सन् कथंरमै अहं स्वयं स्वस्मै क्षेमंकर: अस्मि तामात् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—इन्द्रियों का भोग क्षेम करने वाला नहीं है उसमें मैं अज्ञानी होता हुआ कैसे रमूं ? मैं तो स्वयम् स्वयं के लिये क्षेमंकर हूँ इसलिये मैं अपनेमें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

(२६)

दृश्यो रम्यो न विश्वास्यो ज्ञानमात्रमहंयत: ।
विश्वासानि रमै क्वात: स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—दृश्य: अरम्य: अस्ति च विश्वास्य न अस्ति यत: अहं ज्ञान मात्रं अस्मि तत: क्व विश्वासानि क्व रमै अत: स्वयं स्वस्मै स्वे सुखी स्याम् ॥

अर्थ—दृश्यमान पदार्थ अरम्य हैं और विश्वासके योग्य नहीं है जबकि मैं ज्ञानमात्र हूँ तब कहाँ विश्वास करु और रमण करु इसलिये मैं तो अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(२७)

त्यागादाने परे भिन्ने किमौपाधिक एवहि ।
हेयोऽनाश्रित्य तं तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—भिन्ने परे किं त्यागादाने हि औपाधिक एव हेयः तस्मात् तं अनाश्रित्य स्वयं स्वस्मै स्वे सुखी स्याम् ॥

अर्थ—अपने स्वरूपसे सर्वथा भिन्न परपदार्थमें क्या त्याग होता क्या ग्रहण करके होता इसलिये उस औपाधिक भाव का अनाश्रय मैं स्वयम् अपने आप अपनेमें अपने लिये सुखी होऊं ॥

(२८)

दृश्यं जडमदृश्योऽन्यश्चेतनश्च तथा पृथक् ।
कस्मिन् रुष्याणि तुष्याणि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—दृश्यं जडं अस्ति च अन्यः चेतनः अदृश्यः अस्ति तथा पृथक् वर्तते तदा कस्मिन् रुष्याणि च कस्मिन् तुष्याणि अहं नु स्वयं स्वस्मै स्वे सुखी स्याम् ॥

अर्थ—दृश्य तो जड़ है और अन्य जो चेतन है वह अदृश्य है तथा ये दोनों पदार्थ मुझसे पृथक हैं तब किसमें मैं रोष करूं और किसमें तोष करूं मैं तो स्वयं स्वयं के अर्थ स्वमें सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(२९)

वृक्षे खगा इवायांति क्षणं यान्ति स्वकर्मतः ।
विश्वास्यं मे किमत्रातः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—प्राणिनः वृक्षे खगा इव एकत्र आयान्ति पुनः क्षणं स्वकर्मतः यान्ति, अत्र मे किं विश्वास्यं अस्ति अतः अहं स्वयं स्वस्मै स्वे सुखी स्याम् ॥

अर्थ—प्राणी, वृक्षपर पक्षियोंकी तरह एक स्थानपर आ जाते हैं फिर कुछ क्षणमें अपने अपने कर्म के अनुसार अन्यत्र चले जाते है, यहाँ पर मेरे क्या विश्वास के योग्य है इसलिये मैं तो स्वयं अपनेलिये अपनेमें सुखी होऊं ॥

(३०)

एकान्तेऽस्तु निवासो मे सर्वविस्मरणं भवेत् ।
संयोगेन न मे लाभः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय—मे एकान्ते निवासः अस्तु सर्वविस्मरणं भवेत् संयोगेन मे लाभः न अस्ति अहं नु स्वयं स्वस्मै स्वे सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मेरा एकान्तमें निवास होओ सबका विस्मरण होओ संयोगसे मेरे कोई लाभ नहीं है मैं तो अपने आप अपनेलिये अपनेमें सुखी होऊं ॥

Version 1

(३१)

भोगाः भुक्ता मुहुस्त्यक्तास्तानुच्छिष्टान् किमर्थये।
ज्ञानमात्रं हि भुञ्जानः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–मया मुहुः भोगाः भुक्ताः च त्यक्ताः तान् उच्छिष्टान् भोगान् किं अर्थये हि ज्ञान मात्रं भुञ्जानः अहं स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–मैंने बारम्बार तो भोग भोगे और छोड़े उन जूठे भोगोंको क्या चाहूं निश्चयसे ज्ञानमात्र भावको भोगता हुआ मैं अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(३२)

भुक्त्वा त्यजानि भावोऽयं सव्याजो निर्वृतिं सदा।
भावयेयं निवृत्याहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय–भुक्त्वा त्यजानि अयं भावः सव्याजः अस्ति अतः सदा निवृत्तिं भावयेयं यतः निवृत्य अहं स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–मैं भोगोंको भोगकर फिर छोड़ूं यह भाव छलसहित है इसलिये मैं तो सदा निर्वृति की भावना करता हूँ जिससे मैं सर्व परभावोंसे निवृत्त होकर अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(३३)

निरायूरैचये हेतोः कालस्येच्छा हि तृष्णया।
तृष्णां स्वनाशिनीं मुक्त्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय–निरायूरैचये हेतोः कालस्य इच्छा हि तृष्णया भवति अतः स्वे स्वस्मै स्वनाशिनीं तृष्णां मुक्त्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ–आयुके क्षय और धन (ब्याज) के संचयमें कारणभूत समय व्यतीत होने की इच्छा नियमसे तृष्णासे होती है इसलिये आपके ही विनाश करने वाली तृष्णाको छोड़कर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(३४)

परान् पश्यामि व्यापन्नान् तथा पश्यानि स्वं यदि।
दोषमुक्तः स्वलक्ष्यः सन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–यथा परान् व्यापन्नान् पश्यामि तथा यदि स्वं पश्यानि तर्हि दोषमुक्तः स्वलक्ष्यः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–जिसप्रकार परजीवोंको आपत्तिमें पड़ा हुआ देखता हूं उस प्रकार यदि अपनेको व्यापन्न समझूं तो आपत्ति से मुक्त होकर स्व आत्माका दृढ़ लक्ष्यवाला होता हुआ अपनेमें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(३५)

स्वोपादानेन जायन्तेऽर्था जायन्तां न वा ततः ।
हितं नैव निजं दृष्ट्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–अर्थाः स्वोपादानेन जायन्ते अथवा जायन्तां वा न जायन्ताम् ततः हितं न एव अस्ति अतः निजं दृष्ट्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–पदार्थ अपने अपने उपादानसे पैदा होते हैं अथवा पदार्थ पैदा हों या न हों उनसे मेरा कोई हित नहीं है इसलिये निजही को देखकर अपनेमें अपने अर्थ अपने द्वारा सुखी होऊं ॥

(३६)

आसमस्मि भविष्यामि सुखे दुःखेऽहमेककः ।
परयोगे न लाभो मे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय–अहं सुखे दुःखे एककः आसम् एककः अस्मि एककः भविष्यामि परयोगे मे लाभः न अहं नु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–मैं सुखमें दुःखमें एक अकेला ही था अकेलाहीहूँ अकेला ही होऊँगा परसंयोगसे मेरा कोई भी लाभ नहीं है मैं तो अपने अर्थ अपने ही द्वारा सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(३७)

खेदेन विषये वृत्तिर्वृत्तौ पश्चाच्च खेदता ।
भोगः खेदमयस्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–विषये वृत्तिः खेदेन भवति वृत्तौ च पश्चात् खेदता भवति आः भोगः सर्वदा खेदमयः अस्ति तस्मात् अहं भोगतः निवृत्य स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ–विषयोंमें प्रवृत्ति खेदसे होती है भोगनेके कालमें खेद होता है और भोगनेके अनन्तर भी खेद होता है अतः भोग सर्व समय खेदमय हैं इसलिये मैं तो भोगसे निवृत्त होकर अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(३८)

शंसकाः मां न पश्यन्ति पश्यन्तो व्यक्तयलक्ष्यकाः ।
कौ का निष्ठा निजास्थास्था स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ।

अन्वय–शंसकाः मां न पश्यन्ति मां पश्यन्तः आत्मानः व्यक्त्यलक्ष्यकाः सन्ति पुनः अस्यां कौ निष्ठा का अस्ति हि निजास्था एव आस्था वर्तते अतः स्वं आदृत्य स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–प्रशंसाकरने वाले लोग मुझको नहीं देखते हैं और मुझको देखने वाले आत्मा व्यक्तिके लक्ष्यसे परे हैं फिर इस पृथ्वीपर निष्ठा ही क्या है वास्तवमें निज आत्मा का आदर ही सच्चा आदर है इसलियेनिजका आदर करके मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(३९)

भिन्नपूतितनोरास्था स्वं किं लाभयते ततः ।
कौ का निष्ठा निजास्थास्था स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय–भिन्नपूतितनोः आस्था किं स्वं लाभयते ? न पुनः ततः कौ का निष्ठा भवेत् हि निजास्था एव आस्था अतः स्वं आदृत्य स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–स्वमें भिन्न अपवित्र शरीरका आदर क्या आत्माको कुछ लाभकर होता है ? नहीं, फिर शरीरके आदर से पृथ्वीपर क्या प्रतिष्ठा हो निश्चयसे निजात्माका ही आदर सच्चा आदर है इसलिये स्व आत्माका आदर करके मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(४०)

नामाक्षरैर्न सम्बन्धोह्यात्मनः किं तदाख्यया ।
कौ का निष्ठा निजास्थास्था स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ।

अन्वय—हि आत्मनः नामाक्षरैः सम्बन्धः न अस्ति पुनः तदाख्यया किं । च तदाख्यया कौ का निष्ठा अस्ति हि निजास्था एव आस्था अतः स्वं आदृत्य स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–निश्चयसे इस आत्माका नामके अक्षरोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है फिर उस नामसे क्या होता और उस नाम की प्रसिद्धिसे संसारमें आत्मा की क्या प्रतिष्ठा है वास्तवमें निज आत्माकी आस्था ही सच्ची आस्था है इसलिये निजका आदर करके अपनेमें अपने लिये स्वयम् सुखी होऊं ॥

(४१)

न किमेकदशारूपोऽनाद्यनन्तस्तदा रुचिः ।
कास्तु मे लोकनिक्षेपे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–अहं किमेकदशारूपः न अस्मि अनाद्यनन्तः अस्मि तदा मे लोकनिक्षेपे का रुचिः अस्तु अहं नु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मैं किसी भी एक दशा रूप नहीं हूँ अनादि अनिधन हूँ तब मेरी लोकव्यवहारमें क्या रुचि हो मैं तो अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(४२)

रागवह्नीन्धनं दृश्यं किं संचित्येन्धनं स्वयं ।
शीतलोऽपि पतान्यग्नौ स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय–इदं दृश्यं रागवह्नीन्धनं तत् इन्धनं स्वयं संचित्य शीतलः अपि अग्नौ किं पतानि अहं नु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–यह दृश्यमान जगत रागरूपी आगकेलिये इन्धन है उस इन्धनको खुद बटोर कर शीतल स्वभाव होता हुआ भी आगमें क्या गिरूं ? मैं तो अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(४३)

मृत्यै के ह्युद्यताः मृत्युरायात्याकस्मिकं ततः ।
सन्दिग्धायुषि सद्दृष्ट्या स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय–हि मृत्यै के उद्यताः सन्ति मृत्युः आकस्मिकं आयाति ततः सन्दिग्धायुषि सद्दृष्ट्या स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—निश्चयसे मृत्युकेलिये क्या कोई तैयार रहते हैं ? मृत्यु तो अकस्मात् कभी भी आजाती है तब संदिग्ध आयु होने पर मैं सत् तत्त्वकी दृष्टिकेद्वारा अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(४४)

ज्ञातुं कथं श्रमं कुर्याम् ज्ञेया भान्ति स्वयं ततः ।
सर्वंश्रमं परित्यज्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय–अहं ज्ञातुं श्रमं कथं कुर्याम् ? ज्ञेयाः स्वयं भान्ति ततः सर्वं श्रमं परित्यज्य स्वे स्वस्मै स्वय सुखी स्याम् ।

अर्थ–मैं कुछ भी जाननेकेलिये परिश्रम क्यों करूं ? ज्ञेय तो स्वयम् ही प्रतिभासित होते हैं इसलिये सर्व वाह्य परिश्रम को छोड़कर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

http://www.jainkosh.org

(४५)

न भोगो भोक्तुमायाति सन् बुद्धिस्थोऽघकारणम् ।
किं तं बुद्धिगतं कुर्यां स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥

अन्वय–भोगः भोक्तुं न आयाति केवलं बुद्धिस्थः सन् अघकारण भवति तर्हितं बुद्धिगतं किं कुर्याम् ? अहं नु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ--भोग भोगनेमें नहीं आता है केवल वह तो बुद्धिमें स्थित होता हुआ ही पापका कारण होता है तब उस भोगको बुद्धिगत ही क्यों करूं मैं तो अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(६)

कल्पनया यया प्राप्तोऽकल्प्यः साऽपि न मे यदा ।
कोऽन्यो भव्यः पुनस्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—यया कल्पनया अकल्प्यः प्राप्तः यदा सा अपि मे न अस्ति पुनः अन्यः कः भव्यः तस्मात् स्वं बिन्दन् स्वे स्वस्मै सुखी स्वयं स्याम् ॥

अर्थ—जिस कल्पनाके द्वारा अकल्प्य अर्थात मनवचन काय की चेष्टासे परे रहने वाला अर्थ-प्राप्त हुआ जब वह कल्पना भी मेरी कुछ नहीं है फिर अन्य पदार्थ तो मेरे क्या हो सकते हैं इसलिये मैं तो अपने को अनुभवता हुआ अपनेमें अपनेलियेअपने आप सुखी होऊं ॥

इति श्री मदध्यात्मयोगिना शान्तमूर्त्तिना न्यायतीर्थेण सिद्धांत-न्यायसाहित्यशास्त्रिणा पूज्यश्री १०५ क्षुल्लकमनोहरवर्णिना सहजानन्द स्वामिना विरचितायां सहजानन्दगीतायाम् वैराग्यप्ररूपकः सप्तमोऽध्यायः समाप्तः ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ग्रन्थकर्तुः परिचयः

अन्तिमाख्यानम्

आर्या

वौन्देलदुमदुमापुर्वासिश्रीमद्गुलाबचन्द्रस्य
श्रीतुलसायास्तनयेन श्रीमद्गणेशशिष्येण ॥
सहजानन्देन मनोहरेण सहयविंशशततमे व्यब्दे ।
शुक्ले पौषे रचिता श्रीसहजानन्दगीतेयम् ॥ युग्मम् ॥

अन्वय—वौन्देलदुमदुमापुर्वासिश्रीमद्गुलाबचन्द्रस्य श्रीतुलसायाः तनयेन श्रीमद्गणेशशिष्येण सहजानन्देन मनोहरेण सहयविंशशततमे व्यब्दे (२००७) पौषे-शुक्ले इयं श्री सहजानन्दगीता रचिता ॥

अर्थ—बुन्देलखण्डस्थ डुमडुमा नगरीमें निवास करने वाले श्रीगुलाबचन्द्रजी व श्रीतुलसाबाईके पुत्र व श्रीमान् १०५ क्षुल्लक पूज्यश्रीगणेशप्रसादजी वर्णी महाराज के शिष्य क्षुल्लक मनोहर वर्णी सहजानन्द द्वारा पौष शुक्ल विक्रम सम्वत् २००७ में यह श्रीसहजानन्दगीता रची गई।

समर्पणम्

स्वस्तिश्री श्रीमतोऽध्यात्मसुधासिन्धोर्महात्मनः ।
न्यायाचार्यस्य सार्वस्य विष्टपख्यातोर्वर्णिनः ॥ (१)
श्रीगणेशप्रसादस्य प्रसादेनानुशिक्षितः ।
श्रद्धानतः समाभारी दीक्षितो लोचनीकृतः ॥ (२)
ज्ञातस्वः सहजानन्दः शिष्यो वर्णी मनोहरः ।
संसारच्छेदसन्द्रष्टा कृतज्ञोऽहंपदावलिम् ॥ (३)
शिक्षादीक्षागुरोर्वाल्यगुरोश्चर्याप्रवर्तिनः ।
श्वद्धेयपुण्यसेवायामर्पयामि महादरम् ॥ (४)
अर्पणस्य प्रसादेन स्वस्मै स्वे स्वं स्वयम् स्वतः ।
अर्पयित्वा स्थिकृत्यस्यां स्वस्मै स्वे सुखीस्त्वयं ।५।(कुलकम्)

अन्वय—स्वस्तिश्री श्रीमतः अध्यात्मसुधासिंधोः महात्मनः न्यायाचार्यस्य सार्वस्य विष्टपख्यावर्णिनः श्रीगणेशप्रसादस्य प्रसादेन अनुशिक्षितः श्रद्धानतः समाभारी लोचनीकृतः दीक्षितः ज्ञातस्व संसारच्छेदः-सन्द्रष्टा कृतज्ञः अयं शिष्यः मनोहरः वर्णी सहजानन्दः इमां पदावलिं शिक्षादीक्षागुरोः चर्या वाल्यगुरोः चर्या प्रवर्तिनः श्रद्धेयपुण्य सेवायाम् महादरम् अर्पयामि । अर्पणस्य प्रसादेन स्वे स्वं स्वतः स्वयं स्वस्मै अर्पयित्वा च स्थिरीकृत्य स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—कल्याणमय श्रीमान् अध्यात्मामृतके समुद्र महान है आत्मा जिसका ऐसे न्यायाचार्योपाधिभूषित सर्वके हितरूप लोक प्रसिद्ध वर्णी श्री गणेशप्रसादजीमहाराज

Report any errors at vikasnd@gmail.com

के प्रसादसे अनुशिक्षित हुआ श्रद्धासे नत आभारी लोचनीकृत व दीक्षित हुआ, जाना है स्वको जिसने ऐसा तथा संसारपरिणामके अभावका देने वाला कृतज्ञ यह शिष्य मनोहर वर्णी सहजानन्द नामसे व्यवहृत मैं इस पदावली (सहजानन्द गीता रूप पद समूह) को शिक्षा दीक्षाके गुरु तथा मेरे बाल्यकालसे ही जो गुरु हुए एवं जो मेरी चर्याके प्रवंतन करनेवाले हैं उनको श्रद्धेय पवित्र सेवामें महान आदरपूर्वक अर्पण करता हूँ।

समर्पणके प्रसादसे फिर मैं स्वमें स्वको स्वकी ही परिणतिके अनन्तर स्वके द्वारा स्वके लिये अर्पण करके और स्थिरीकरण करके मैं अपनेमें अपने लिए अपने द्वारा सुखी होऊं॥

कल्याणमस्तु

http://www.jainkosh.org

चित्संस्तवनम्

प्रभजामि शिवं चिदिदं सहजम्

शिवसाधनमूलमजं शिवदम् निजकार्यसुकारणरूपमिदम्।
भवकाननदाहविदाहहरम् प्रभजामि शिवं चिदिदं सहजम्॥१॥

भवसृष्टिकरं शिवसृष्टिहरं शिवसृष्टिकरं भवसृष्टिहरम्।
गतसर्वविधानविकल्पनयम् प्रभजामि शिवं चिदिदं सहजम्॥२॥

शिवसृष्ट्यकरं भवसृष्ट्यहरं भवसृष्ट्यकरं शिवसृष्ट्यहरम्।
गतसर्वनिषेधविकल्पनयं प्रभजामि शिवं चिदिदं सहजम्॥३॥

परिणामगतं परिणामरहं परिणामभवं परिणामयुतम्।
उपपादविनाशविकल्परहम् प्रभजामि शिवं चिदिदं सहजम्।४।

स्वचतुष्टयमूलमभिन्नगुणम् मतिदर्शदर्शनशक्तिसुशर्ममयम्।
अचलं शिवशङ्करदृष्टिपथं प्रभजामि शिवं चिदिदं सहजम्॥५॥

मुद्रक—नवयुगान्र प्रेस, शारदा रोड, मेरठ।

Version 1